ISSN : 0373-1200

जनवरी 2002

सी. एस. आई. आर. तथा डी. बी. टी. नई दिल्ली के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित

मूल्य : 7.00 रु०

अप्रैल 1915 से प्रकाशित हिन्दी की प्रथम विज्ञान पत्रिका

विज्ञान

- मल्टीमीडिया
- आतंकवादी हमलों का विध्वंसक कहर
- नरसंहार के नये दूत-जैविक हथियार
- कोयला खान में दुर्घटनाएँ
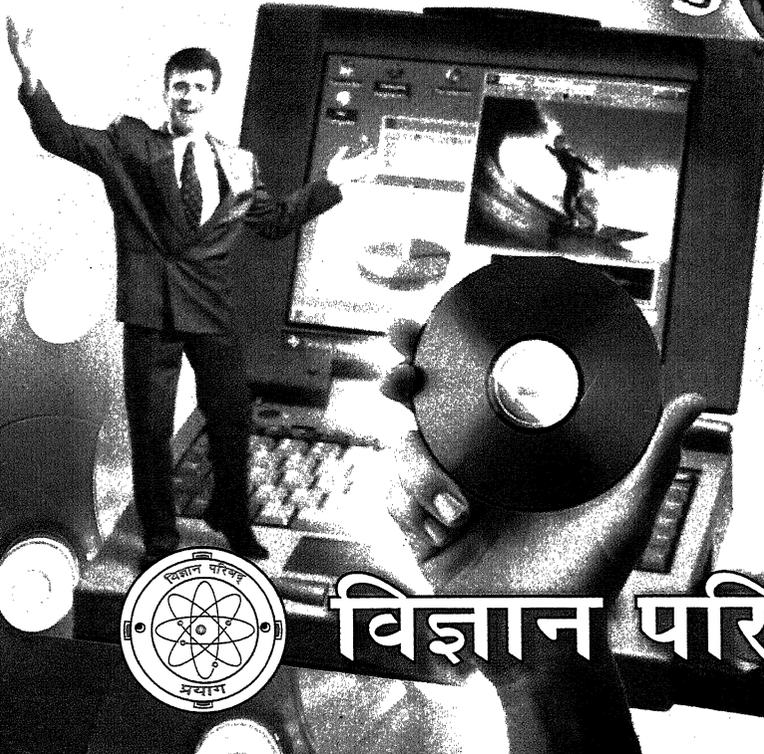
विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915
वर्ष 87 अंक 10
जनवरी 2002

मूल्य

आजीवन व्यक्तिगत : 750 रुपये
आजीवन संस्थागत : 1,500 रुपये
त्रिवार्षिक : 210 रुपये
वार्षिक : 75 रुपये
यह प्रति : 7 रुपये

सभापति
डॉ0 (श्रीमती) मंजु शर्मा

सम्पादक एवं प्रकाशक
डॉ0 शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

मुद्रक
नागरी प्रेस
91/186, अलोपी बाग, इलाहाबाद
फोन : 502935, 500068

कम्प्यूटर कम्पोजिंग
शादाब खालिद

सम्पर्क
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002
फोन : 460001 ई-मेल : vigyan1@sancharnet.in
वेबसाइट : www.webvigyan.com

विषय सूची

जैविक युद्ध अर्थात् बायोलाजिकल वारफेयर

डॉ० पी.एल. मैथ्यू

'डिफेंस साइंस जर्नल के अक्टूबर 2001 अंक में "रक्षा में जैवप्रौद्योगिकी" शीर्षक से डॉ0 पी. एल. मैथ्यू द्वारा लिखित एक समीक्षा लेख छपा है जिसमें जैविक हथियारों पर विस्तार से चर्चा है– उसी पर आधारित जानकारी प्रस्तुत है

– सम्पादक

जैविक युद्ध ––– का अर्थ है दुश्मन की सेना, आबादी, खाद्यस्रोत तथा पशुधन को हानि पहुँचाने या नष्ट कर देने के लिए रोगउत्पादक कारकों का प्रयोग। इन कारकों में कोई जीवित सूक्ष्मजीव (या निर्जीव वाइरस), या जैवसक्रिय पदार्थ हो सकता है जिसे पारम्परिक प्रक्षेपास्त्र या सिविलियन साधनों से पहुँचाया जा सके। एंटीबायोटिक प्रतिरोधी प्रजातियों का उपयोग करने वाले जैविक हथियारों से आक्रमण किया जा सकता है जिससे एन्थ्रैक्स तथा प्लेग जैसे संचरणीय रोगों को फैलने दिया जा सकता है जो स्थानिक या महामारी रूप धारण कर सकते है।

शत्रुओं के भोजन को किसी शाकनाशी, पेस्टीसाइड या भारी धातु से संदूषित कराया जा सकता है। यहीं नहीं, रोगजनक जीवों को उन्मुक्त करके नकदी फसलें नष्ट की जा सकती हैं। इस फसल विरोधी युद्ध कहते हैं। इससे भुखमरी तथा कुपोषण फैलता है। आपको स्मरण होगा कि वियतनाम युद्ध में सोयाबीन, चुकन्दर, कपास, गेहूँ, धान की फसलें इसी तरह नष्ट की गई थीं।

आज जैव हथियारों का प्रयोग दो प्रकार के लाभों के कारण विचाराधीन है–

1. गरीबों के परमाणु बम के रूप में
2. पारम्परिक हथियारों के न होने पर भी सस्ते में युद्ध किया जा सकता है।

इस तरह की विचारधारा को इसलिए भी बल मिला रहा है क्योंकि अधिकांश देशो में अस्पतालों से जुड़ी सम्बद्ध आधुनिक दवाओं के कार्यक्रमों या प्रयोगशालाओं में इन जैव हथियारों को तैयार किया जा सकता है जिसकी शत्रुराष्ट्रों को भनक भी नहीं हो सकती

कहा जाता है कि पहला जैव हथियार रोमवासियों द्वारा प्रयुक्त किया गया था। यह था शत्रु की जलापूर्ति में मरे पशुओं को डाल कर जल को दूषित करना। आधुनिक काल में जैव प्रौद्योगिकी ने नया जीवनदान दिया है युद्धनीति निर्धारण में। 1918 में जापान की सेना की एक टुकड़ी ने मंचूरिया जीतकर युद्धबन्दियों के साथ जैव हथियारों का प्रयोग किया। तत्पश्चात् जापान के प्रयासों से अवगत होकर 1941 में संयुक्त राज्य अमेरिका ने अपना जैव युद्ध कार्यक्रम शुरू किया। इसके अन्तर्गत कुछ क्षेत्रों में इनका छिड़काव किया गया और उन क्षेत्रों में प्रवेश वर्जित कर दिया गया। सबसे बड़ा प्रयाग सैरेटिया मार्केसेन्स का छिड़काव था जो

विज्ञान के सभी पाठकों को नव वर्ष की मंगल कामना

–संपादक

जैव हथियारों के रूप में सक्षम सूक्ष्मजीव

अभिकर्ता का नाम	विशेषता
	बैक्टीरिया
बैसिलस ऐन्थ्रैसिस	यह एंथ्रेक्स फैलाता है, इसकी इनक्यूबेशन अवधि 1–6 दिन है। इसकी प्रभावी मात्रा 10 हजार स्पोर या कम है। यह ज्वर तथा थकान उत्पन्न करता है, उसके बाद हालत सुधरती है किन्तु तुरन्त ही श्वास कष्ट बढ़ता है, न्यूमोनिया हो जाता है और 2–3 दिन में मृत्यु हो जाती है।
येर्सीनय पेस्टिस	यह बुबोनिक प्लेग फैलाता हे। इनक्यूवेशन अवधि 2–10 दिन, बीमारी की अवधि 1–2 दिन, एक सौ से बीस हजार जीवों की आवश्यकता, तीव्र ज्वर, रक्त संचार का रुकना और मृत्यु।
ब्रुसेला सुइस	यह बुसेलोसिस फैलाता है। इनक्यूवेशन अवधि 1–3 सप्ताह, 1300 जीव पर्याप्त। ज्वर तथा ठंड, सरदर्द, भूख मिटना, मानसिक अवसाद, अत्यधिक थकान, जोड़ों में दर्द तथा पसीना आना।
पास्तुरेल्ला टुबैरेन्सिस	टुलेरेमिया फैलाता है। इनक्यूवेशन अवधि 3–5 दिन, 10–50 जीव पर्याप्त। सामान्य पीड़ा, खांसी, बीमार जैसी स्थिति, 30 दिनों के भीतर 30–60 प्रतिशत रोगी मर जाते हैं।
	रिकेट्सिया
काक्सीएल्ला बर्नेट्टी	इससे क्यू ज्वर फैलता है। इनक्यूवेशन अवधि 10–20 दिन। 10 या कम जीव पर्याप्त। न्यूमोनिया, खाँसी, छाती का दर्द, 12 से 14 दिनों तक बीमारी रहती है।
	वाइरस
वेनेजुलन एक्वीन	इन्क्यूवेशन अवधि 1–5 दिन। 25 संक्रामक इकाइयां। एन्सेकैलिटिस ज्वर, ठंड, तीव्र सिरदर्द, मिचली, डेलीरियम, मूर्च्छा, आघात, मृत्यु।
	टाक्सिन
बोटुलिनम	70 नैनोग्राम। कमजोरी, चक्कर आना, गला तथा मुँह सूखना, दृष्टि का धुँधलापन, पेशियों में कमजोरी, श्वास का एकाएक रुकना तथा मृत्यु। कुछ घंटे से लेकर कई दिनों तक प्रभाव।
रिसिन	200 माइक्रोग्राम। मिचली, कै, कमजोरी, ज्वर तथा खांसी। 7–10 दिनों तक प्रभाव।
स्टैफिलोकोकस ऐन्टेरोटाक्सिन बी	2000 माइक्रोग्राम। तेज मिचली, डायरिया तथा कै। 4–6 दिनों तक प्रभाव।

सम्मान

विज्ञान परिषद् प्रयाग की सभापति तथा भारत सरकार के जैव प्रौद्योगिकी विभाग की सचिव डॉ0 श्रीमती मंजु शर्मा को 13 दिसंबर 2001 को लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित दीक्षांत समारोह के अवसर पर डी.एससी. की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया। विज्ञान परिषद् परिवार की बधाइयाँ .... – सम्पादक

जैव प्रौद्योगिकी विधि से निर्मित हथियारों के गुण-दोष

सबसे बड़ा गुण है इन जैव हथियारों की उच्च मारक क्षमता। अनुमान है कि 1 ग्राम टाक्सिन से 1 करोड़ लोग मारे जा सकते हैं। बोटुलिन नामक टाक्सिन रासायनिक नर्व गैस सैरिन की तुलना में 30 लाख गुना शक्तिशाली है। यदि इस टाक्सिन को स्कड मिसाइल में भर कर युद्ध क्षेत्र में डाल दिया जाये तो 3700 किमी² क्षेत्रफल को प्रभावित कर सकता है जो सैरिन की तुलना में 16 गुना अधिक क्षेत्रफल होगा। टाक्सिनों की लागत भी कम होगी। उदाहरणार्थ 1 किमी² क्षेत्रफल को प्रभावित करने के लिये पारम्परिक हथियारों पर 20 हजार डालर खर्च आयेगा, नाभिकीय हथियारों पर 800 डालर, रासायनिक हथियारों पर 60 0 डालर और जैव हथियारों पर 1 डालर।

एंथ्रेक्स की मारक क्षमता के बारे में बताया गया है कि यदि नौ किग्रा एंथ्रेक्स को किसी चलती ट्रक से छिड़का जाये तो यह 18 लाख लोगों को मार डालेगा। इसीलिये जैव हथियारों को गरीबों का परमाणु बम कहा गया।

इन जैव हथियारों को ले जाने के लिये कटे फल की एक फाँक से लेकर बैलिस्टिक मिसाइल तक काम में लाये जा सकते हैं। पारम्परिक हथियार केवल एक बार विस्फोट करक व्यर्थ हो जाते हैं किन्तु जैव हथियारों के कुछ कण ही संक्रमित होकर हजारों लोगों को मार सकते हैं और कई पीढ़ियों तक अपनी मारक क्षमता बनाये रख सकते हैं।

जैव हथियारों का एकमात्र दोष यही है कि इनकी प्रभावात्मकता के बारे में भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। मौसम का इन पर भारी प्रभाव पड़ता है। यदि प्रतिकूल हवा बहे तो ये शत्रु क्या मित्र राष्ट्र को भी चपेट में ले सकते हैं। इनकी आयु के बारे में भी कुछ नहीं कहा जा सकता। ये स्थल विशेष के सूक्ष्मजीवों में घुलमिल कर शत्रु का विनाश करने के बाद भी बने रह सकते हैं। नैतिक दृष्टि से भी प्रयोगकर्ता देश का पता लग जाने पर उसे अक्षम्य अपराधी घोषित होने का भय बना रहता है।

सर्वप्रथम 1925 में रासायनिक तथा जैव हथियारों के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगा था। उसके बाद 1972 में 150 राष्ट्रों ने उसकी पुनः पुष्टि की। 1980 के बाद से जैव प्रौद्योगिकी द्वारा तैयार किये जाने वाले ऐसे जैव हथियारों के प्रति सैन्य विभाग का रवैया बदल चुका है। अब ऐसे जीवाणुओं तथा वाइरसों के विरुद्ध काम में आने वाले वैक्सीनों की खोज, जैव हथियारों की तुरन्त पहचान और निरोधकों के विकास पर बल दिया जा रहा है। जैव उत्प्रेरकों को सशक्त प्रविधि के रूप में प्रयुक्त किया जा रहा है।

-साभार

जैविक व रासायनिक हथियार प्रभावहीन करेंगे भारतीय वैज्ञानिक

भारतीय वैज्ञानिकों ने जैविक व रासायनिक हथियारों के मद्दे नजर रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (डी.आर.डी.ओ.) की शाखा डी.एस.एस.आर. डी.ई. ने सेना के लिए नाभिकीय वस्त्र (न्यूक्लिअर बायोलॉजिकल क्लोदिंग-एन. बी.सी.) तैयार किया है इस पर जैविक और रासायनिक हथियारां का कोई असर नहीं होता परन्तु सम्पूर्ण मानव जाति के लिए इन वस्त्रों को उपलब्ध कराना एवं बचाना सम्भव नहीं है।

इसका उत्पादन भारत में शुरू हो गया है। एन.बी.सी. को परीक्षण की कसौटी पर खरा उतारने के लिए भारतीय फौजों को प्रशिक्षण भी दिया जा रहा है। आर्डिनेंस इक्विपमेंट फैक्ट्री और आर्डिनेंस पैरासूट फैक्ट्री में इस वस्त्र का उत्पादन भी चालू है।

डी.आर.डी.ओ. के रक्षा वैज्ञानिक करीब दस साल से एन.बी.सी. बनाने पर कार्य में लगे थे। 1992 से चल रहा प्रोजेक्ट आज सफल हो पाया है और जैव व रासायनिक हथियारों को बेअसर करने वाले वस्त्र का उत्पादन भारत ने करना शुरू कर दिया है। विशेषज्ञों का कहना है कि एन.बी.सी. के एक सूट की कीमत करीब सात हजार तक हो सकती है। परन्तु नाभिकीय विसरण से एन.बी.सी. बचाव नहीं कर पाता।

नरसंहार के नये दूत

✍ डॉ० ओम प्रभात अग्रवाल

इतिहास साक्षी है कि आदि काल से ही महाकाल की यात्रा कभी नहीं रुकी। तांडव न केवल निरंतर चलता रहा है बल्कि इसकी गति और विभीषिका भी उत्तरोत्तर बढ़ती रही है। प्रथम विश्वयुद्ध से संसार पूरी तरह उभरा भी नहीं था कि द्वितीय युद्ध सिर पर आ पहुँचा। इसके बाद लगभग तुरंत ही कोरिया युद्ध और फिर वियतनाम, ईराक, कुवैत युद्ध आदि। सच पूछें तो द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से ही तृतीय की आशंका बराबर मँडराती रही है। वर्तमान में आतंकवाद के विरुद्ध शंखनाद से तो लगता है कि वह बहुत समीप में ही कहीं छिपा बैठा है। रही प्रत्येक युद्ध के साथ महाकाल के नर्तन की प्रलयंकारी गति में वृद्धि की बात तो वह भी जगजाहिर है। प्रथम विश्वयुद्ध में पारम्परिक हथियारों के साथ साथ रासायनिक आयुधों का इस्तेमाल पहली बार किया गया। जर्मन फौजों द्वारा क्लोरीन एवं मस्टर्ड (डाइक्लोरोडाइएथिल सल्फाइड) गैसों के प्रयोग से दुश्मन के नब्बे हज़ार सैनिक दम घुटने से तिल-तिल कर समाप्त हो गये। इन नये आयुधों ने समस्त विश्व की आँखें विस्फारित कर दीं। भविष्य में इनकी विभीषिका से बचने के लिये 1925 में जेनेवा संधि हुई। फिर भी द्वितीय विश्व युद्ध में लुके छिपे और नापाम बमों (आग लगाने वाले पेट्रोलियम जेली बम) का तो काफी खुल कर प्रयोग हुआ। परमाणु बम का भी प्रयोग हुआ जिसकी विनाश लीला देख कर लगा कि जैसे शिव के तृतीय नेत्र ही खुल गये हों। साथ में एक और नये प्रकार के आयुध केवल परीक्षण के लिये प्रयुक्त हुये- जैविक आयुध। इनकी कम लागत और सर्वग्रासी संभावनाओं को देखकर मृत्यु के व्यापारियों की तो बाँछें खिल गईं। जोर शोर से शोध प्रारंभ हो गई और अब परमाणु अथवा हाइड्रोजन बमों से भी अधिक, भविष्य में इन नये आयुधों के प्रयोग की आशंका से सम्पूर्ण मानवता त्रस्त है।

द्वितीय विश्वयुद्ध में अंग्रेजों ने और वियतनाम युद्ध में स्थानीय साम्यवादियों ने मधुमक्खियों का इस्तेमाल दुश्मन के छक्के छुड़ाने में किया था। वियतनामियों ने तो किसी प्रकार मधुमक्खियों को अमेरिकन वर्दी की पहचान करा दी थी जिसे देखते ही वे अमेरिकन सैनिकों पर प्रलय की भाँति टूट पड़ती थीं। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि इन लघु जीवधारियों ने एक आयुध की भूमिका का निर्वाह किया था। परन्तु आधुनिक संदर्भों में जैविक युद्ध से तात्पर्य रोग फैलाने वाले बैक्टीरिया, वायरस आदि सूक्ष्मजीवियों, कुछ विषैली फफूँदियों अथवा इनसे स्रावित विष (टॉक्सिन) आदि का बड़े पैमाने पर इस्तेमाल करने से है ताकि बीमारियों से लड़-लड़ कर दुश्मन की सेना एवं नागरिकों की युद्ध करने की इच्छाशक्ति ही समाप्त हो जाये। स्पष्ट है कि ये बड़े कारगर आयुध हो सकते हैं क्योंकि इनकी संख्या रक्तबीज की भांति शीघ्रता से स्वमेव बढ़ती हुई कुछ ही समय में एक विशाल भूखंड को अपनी चोट में ले सकती है। परमाणु बम का निर्माण अत्यंत मँहगा और तकनीकी जटिल है। परंतु लगभग उसी प्रकार का परिणाम देने वाले जैविक आयुध छोटे से छोटे एवं अपेक्षाकृत साधनहीन देशों द्वारा और अंततः वायु माध्यम (एयरोसॉल के रूप में) अथवा पेयजल, भोज्य पदार्थों आदि का सहारा लेकर शत्रु को आक्रांत कर सकते हैं। एक छोटा सा वायुयान जो सौ किलो एंथ्रेक्स बीजाणुओं (स्पोर) को हवा में फैला सके, दस लाख मानवों की मृत्यु का कारण बन सकता है। तभी तो इन आयुधों को गरीब देशों के परमाणु अस्त्र की संज्ञा दी गई है। पचास के दशक में ही ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने नरसंहार के इन दूतों को जीवित अवस्था में ही अतिशीतलन (lyophitisation) द्वारा आयुधीकृत करने

का रास्ता साफ कर दिया था ताकि बमों और मिसाइलों द्वारा उन्हें दूर–दूर तक फैलाया जा सके।

ईराक के राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन अपने जैविक आयुध भंडार को, जिसमें ऐसी पचीस मिसाइलें थीं जिनके स्फोटक शीर्ष (वार हेड) में ग्यारह हज़ार पौण्ड सूक्ष्मजीवी संग्रहीत किये गये थे, 'ग्रेट इक्वलाइज़र' कह कर पुकारते थे। अमेरिकी गुप्तचर संस्था सी.आई.ए. की एक रपट के अनुसार तो ईराक ही नहीं विश्व के सोलह अन्य देशों, जिनमें भारत, चीन और रूस जैसे विशाल देशों से ले कर सीरिया, लीबिया व ताइवान जैसे छोटे देश तक सम्मिलित हैं, में भी इन आयुधों के पर्याप्त भंडार हैं। अमेरिका स्वयं भी इस मामले में पाक और साफ नहीं हैं। सितंबर 2001 में न्यूयार्क टाइम्स में छपी एक रपट के अनुसार पेंटागन एक ऐसा ही बड़ा कारखाना चला रहा है। आश्चर्य तो यह है कि अभी पाकिस्तान का नाम इन आयुधों के संग्राहकों में नहीं है।

जैविक युद्ध का छोटा सा ट्रेलर द्वितीय विश्वयुद्ध में देखने को मिला था। कहा जाता है कि जापानियों ने पकड़े गये शत्रु सैनिकों के माध्यम से, मंचूरिया पर आधिपत्य जमाने के बाद वहाँ के एक गाँव कांगशान में प्रयोग के तौर पर प्लेग फैला कर सैकड़ों गांववासियों को प्लेग का शिकार बना दिया था। ऐसे स्पष्ट संकेत हैं कि जापान ने हैज़ा और चेचक के अतिरिक्त कई बैक्टीरिया के भी युद्धक प्रयोग इसी महायुद्ध में किये थे। 11 सितंबर 2001 को वर्ल्ड ट्रेड सेन्टर की इमारत ध्वस्त होने के बाद से अमेरीकियों को एक ही डर खाये जा रहा है कि आतंकवादियों द्वारा उन पर कभी भी भीषण संक्रामक बीमारियों के जनक सूक्ष्मजीवियों की बरसात की जा सकती है। इसी कारण कुछ दिनों के लिये हवाई जहाजों द्वारा फसल पर कीटनाशकों का छिड़काव तक रोक दिया गया है क्योंकि छिड़काव घोल में कई ऐसे बैक्टीरिया मिलाये जा सकते हैं। स्मरणीय है कि बिन लादेन ने जेहाद में जैविक आयुधों के प्रयोग का आह्वान किया भी है तथा काबुल में एंथ्रेक्स की वैक्सीन तैयार करने का कारखाना लगा है जो आवश्यकता पड़ने पर इसके बैक्टीरिया का भी सफलतापूर्वक उत्पादन कर सकता है। फिर आजकर जीन इंजीनियरी के युग में कौन कह सकता है कि विकृत सोच वाला कौन सा वैज्ञानिक किस बैक्टीरिया में कौन सा परिवर्तन कर उसकी संक्रमण शक्ति को रोग के ज्ञान वैक्सीन अथवा एंटीबायोटिक की क्षमता से किस प्रकार सर्वथा बाहर कर देने का प्रयत्न कर रहा है। दृष्टव्य है कि कुछ समय पूर्व ही अमेरिका में एंथ्रेक्स बैक्टीरिया की एक बिल्कुल नई प्रजाति के प्रकाश में आने से वैज्ञानिकों में हड़कंप मच गया था।

आइये देखें कि किन सूक्ष्मजीवियों, फफूंदियों अथवा उनके विष (टाक्सिन) के आयुध रूप में तैयार कर लिये जाने के वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध हैं। प्लेग और हैजे के कारण सूक्ष्मजीवियों के बारे में तो अब बहुत से लोगों को ज्ञान है, अन्य निम्नलिखित हैं–

एंथ्रेक्स है तो खुरों वाले पशुओं की बीमारी, परंतु मानव भी इसके प्रकोप में फँस सकता है। इसका एयरोसॉल आयुध शिकार के फेफड़ों को निष्क्रिय कर देता है और घुट–घुट कर उसकी इहलीला समाप्त हो जाती है। यदि वाहक बैक्टीरिया जल में या भोज्य पदार्थ में मिला दिये जायें तो हैजे के लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं। इनकी इनक्यूबेशन अवधि 2–7 दिनों की हो सकती है। जापानियों ने तो द्वितीय विश्व युद्ध में चीनी बस्तियों को इनका निशाना बनाया ही था, 1979 में रूस में फैली महामारी का कारण भी एक जैविक आयुध कारखाने से इसके बैक्टीरिया के गलती से बाहर आ जाने को समझा जाता है। ऐसा लगता है कि यह बैक्टीरिया इस समय जैविक आयुधों के संग्राहकों के लिये सर्वाधिक चहेता है। तभी तो आतंकवाद के विरुद्ध युद्ध प्रारंभ होते ही अनेकों यूरोपीय देशों, अमेरिका एवं आस्ट्रेलिया में एंथ्रेक्स का ही रहस्यमय प्रसार देखने को मिला। इतना अवश्य है कि रोग संक्रामक नहीं है और प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र रूप से शिकार बनता है।

माल्टा ज्वर के बैक्टीरिया, ब्रूसेला सुइ को भी एयरोसॉल आयुध का रूप दिया ज़ा चुका है। संक्रमण अत्यंत शीघ्रता से फैलता है तथा ज्वर एवं मांसपेशियों का दर्द शरीर को बुरी तरह तोड़ देता है यद्यपि मौतें कम ही होती हैं। मिलते जुलते पोत एवं लस्सा ज्वरों के

वाहकों के भी आयुधीकरण के प्रयास हो रहे हैं।

क्यू ज्वर भी मरणांतक तो नहीं है परंतु शरीर को यह भी तोड़ देता है। इसके लिये कौक्सीला बर्नेटाइ सूक्ष्मजीवी उत्तरदायी होता है और इसे भी एयरोसॉल के रूप में आयुधीकृत किया गया है। संक्रमण के दस दिन बाद से ही प्लूरिसी से मिलते जुलते लक्षण दिखने लगते हैं जो दो दिन से दो सप्ताह तक बने रह सकते हैं।

टुलेरेमिया मुख्यतः खरगोशों एवं चूहों का रोग है जिसे फ्रांसिसेला टुलेरेन्सिस बैक्टीरिया आयुध (एयरोसॉल) के प्रयोग द्वारा मनुष्यों को भी शिकार बनाया जा सकता है। प्रश्वसन तंत्र बुरी तरह प्रभावित होता है तथा इन्फ्लुएंजा के लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं। मृत्यु की पर्याप्त संभावना रहती है।

एबोला विषाणु (वायरस) को भी एयरोसॉल के रूप में आयुधीकृत किया गया है जो आनन फानन में एबोला मारबर्ग नामक बीमारी फैला देता है। रोगी को अत्यधिक उच्च ताप, विभिन्न अंगों से रक्त स्राव, निम्न रक्तचाव आदि कष्ट होते हैं तथा वृक्क को भी हानि पहुँच सकती है। मृत्यु दर पचास से नब्बे प्रतिशत तक होती है। स्मरणीय है कि एबोला की कोई भी काट ज्ञात नहीं है।

एक अन्य विषाणु भी एयरोसॉल के रूप में आयुधीकृत किया गया है जो **वी.ई.ई.** नामक बीमारी (Venezulan Equine Encephalomyelitis) पैदा करता है। यह बीमारी भी मूलतः पशुओं की है, यद्यपि मनुष्य संक्रमित हो सकता है। संक्रमण के 2–5 दिनों के अंदर ज्वर और भयंकर सिर दर्द से मनुष्य निढाल हो जाता है। ऊपर से वमन और डायरिया भी। कभी कभी केन्द्रीय स्नायु तंत्र भी प्रभावित हो सकता है। अच्छी बात केवल यह है कि रोग मरणांतक नहीं होता। एक से दो सप्ताह में स्वास्थ्य ठीक हो जाता है। परंतु यह अवधि दुश्मन की सेना पर वर्चस्व करने के लिये पर्याप्त हो सकती है।

उपरोक्त सूक्ष्मजीवियों के अतिरिक्त कुछ टॉक्सिन भी आयुधीकृत कर लिये गये हैं–

मायकोटॉक्सिन टी–2 एक घातक विष है। यह जल अथवा भोज्य पदार्थों में मिल कर कहर ढा सकता है। विश्वसनीय समाचारों के अनुसार आयुध रूप में इसका प्रयोग लाओस, कम्बोडिया एवं अफगानिस्तान में किया जा चुका है। इसके शिकार के सारे शरीर पर अत्यंत कष्टदायक फफोले पड़ जाते हैं और वे ही तड़पा–तड़पा कर अंततः उसके प्राण हर लेते हैं।

सैक्सीटॉक्सिन तो और भी घातक है। यह वायु माध्यम से कार्य करता है और 24 घंटों के अन्दर अन्दर शिकार को पक्षाघात से अशक्त कर मौत के मुँह में ढकेल देता है।

एक बैक्टीरिया द्वारा स्रावित प्रोटीन विशेष से तैयार किया गया ***बोट्यूलिनम*** भी कम नहीं है। 24–36 घंटों की अवधि में यह मनुष्य को पूरी तरह पक्षाघात से आक्रांत कर देता है और शीघ्र ही प्रश्वसन में असमर्थ हो जाने के कारण वह दम तोड़ देता है। वायु माध्यम का इसका आयुध अत्यंत सफल माना गया है।

ऐफ्लाटॉक्सिन का आयुधीकरण ईराक ने मिसाइल द्वारा शत्रु देश तक पहुँचाने के लिये किया था। यह एक फफूँदी द्वारा स्रावित होता है और शिकार को पीलिया में जकड़ कर अंततः आंतों से रक्तस्राव के माध्यम से उसकी जान ले लेता है।

संभवतः यह सूची युद्धोन्नत देशों को नाकाफी लगी है। इसीलिये कुछ और सूक्ष्मजीवियों के आयुधीकरण पर शोध चल रही है। आइये उनका भी जायज़ा लें–

क्लॉस्ट्रीडियम परफ्रिन्जेन बैक्टीरिया की बरसात आदि रणक्षेत्र में दुश्मन की टुकड़ियों पर कर दी जाये तो सैनिकों के घावों में 8–12 घंटों में गैस गैंग्रीन उत्पन्न हो जाता है। यदि भोजन या जल के माध्यम से शरीर के अन्दर पहुँचाया जाये तो यह भोजन विषाक्तता भी पैदा कर सकता है। **बैसीलस बुर्खोलडेरिया** द्वारा उत्पन्न **ग्लैन्डर्स** रोग भी वायु माध्यम से आक्रमण के लिये उपयुक्त है। यह नाक की श्लेष्मा झिल्लियों में इतनी सोजिश पैदा कर सकता है कि कुछ दिनों में ही मनुष्य परलोक सिधार जाता है। **सालमोनेला** बैक्टीरिया का परीक्षण तो जापानियों ने द्वितीय विश्वयुद्ध में भोज्य

शेष पृष्ठ 14 पर ......

हमला एंथ्रेक्स का

✍ डॉ० जे.एस. यादव

एंथ्रेक्स जो जीवाणुओं के वायु में उड़ने वाले बीजाणुओं द्वारा सामान्यतया पशुओं में उत्पन्न होने वाला रोग है, उसके भय से पूरा पश्चिमी विश्व आक्रांत हो गया है, फ्रांस की स्पेस एजेंसी को खाली करवा लिया गया है जबकि कैंटरबरी में गिरजाघर को जनता के लिये बंद कर दिया गया है। जैविक आतंकवाद से पूरा पश्चिमी जगत भयभीत है। यद्यपि अब तक एंथ्रेक्स से मात्र एक व्यक्ति की मौत हुई है लेकिन जिस प्रकार पत्रों द्वारा एक सफेद पाउडर विभिन्न संस्थाओं व नेताओं को विश्व के विभिन्न देशों में भेजा जा रहा है उससे आतंक का माहौल पैदा हो गया है।

इस भय से पीछा छुड़ाने के लिये यह आवश्यक हो गया है कि, एंथ्रेक्स रोग के 'क्या, कैसे और यदि' के साथ–साथ इसके उपचार के विषय में भी जन–सामान्य को अवगत कराया जाये। एंथ्रेक्स एक ऐसा रोग है जो एक जीवाणु बैसिलस एंथ्रेसिस के वायु में उड़ने वाले बीजाणुओं द्वारा उत्पन्न होता है। इन जीवाणुओं को प्रयोगशाला में बहुत आसानी से विकसित किया जा सकता है। एंथ्रेक्स बीजाणुओं को शुष्क अवस्था में कणों के रूप में रखा जाता है। इन कणों को वायु में फैला कर जैविक युद्ध में प्रयोग किया जा सकता है।

एंथ्रेक्स से तीन प्रकार से संक्रमण फैलता है, पहला– श्वसन के दौरान शुष्क कणिकाओं द्वारा, दूसरा– शरीर के विभिन्न भागों की त्वचा पर पड़ी खरोंचों के संपर्क द्वारा, तथा तीसरा– संक्रमित पशुओं का अधपका मांस खाने से आँतों द्वारा।

श्वसन एंथ्रेक्स के प्रारंभिक लक्षण खाँसी–जुकाम से मिलते–जुलते हैं। अंततः ये श्वसन में भारी रुकावट पैदा करते हैं और यदि इस प्रकार के लक्षण उत्पन्न करने के उपरांत उपचार न किया जाये तो यह रोग घातक सिद्ध हो सकता है।

त्वचा पर संक्रमण प्रारंभ में खरोंच और कीटों के काटने से उत्पन्न होने वाले फफोलों जैसा दिखाई पड़ता है। धीरे–धीरे यह फफोला एक दर्दरहित फोड़े में बदल जाता है। 1 से 3 सेमी0 व्यास वाले फोड़े के मध्य में एक काला निर्जीव क्षेत्र होता है, लसीका ग्रंथियाँ फूल जाती हैं। उपचार रहित लगभग 20 प्रतिशत रोगी मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। उचित जीवाणु विरोधी उपचार से मौतों की संख्या घटकर विरल रह जाती है।

आँतों की भारी सूजन, जी मतलाना, भूख का मर जाना और तेज बुखार, आँतों के एंथ्रेक्स के प्रारम्भिक लक्षण हैं। तत्पश्चात् पेट में दर्द, खून की उल्टियाँ और दस्त लग जाते हैं। यदि समय पर उपचार न किया जाये तो 25 से 60 प्रतिशत रोगी मर जाते हैं।

एंथ्रेक्स उद्‌भवन अवधि लगभग 7 दिनों की होती है। इसके उपरांत रोग के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। इस रोग के मनुष्य से मनुष्य में फैलने की अब तक कोई रिपोर्ट नहीं है। यदि समय पर उपचार किया जाये तो विरल रोगी ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

सिप्रोफ्लोक्सासिन (Cyprofloxacin) एवं डोक्सीसाईक्लीन (Doxycyclin) एंथ्रेक्स की रामबाण औषधियाँ हैं। लगभग 100 कंपनियां सिपरोफलोक्सासिन की प्रतिकृतियाँ बनाने में लगी हैं। इस औषधि का निर्माण एक प्रमुख जर्मन औषधि निर्माता बायर द्वारा किया गया था। इस रोग को फैलने से बचाने का सबसे बढ़िया तरीका जनसंख्या का प्रतिरोधीकरण है। सरकार और सरकारी एजेंसियों को इस निमित्त अपनी आँखें खुली रखनी होंगी।

भारत में स्वास्थ्य विभाग के आँकड़ों के अनुसार एंथ्रेक्स की बीमारी के मामले आमतौर पर कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, उड़ीसा तथा पश्चिमी बंगाल में बसी हुई जनजातियों में पाये जाते रहे हैं। इस बीमारी के फैलने का एक मामला प्रकाश में तब आया जब अलगुरुखी गाँव, जिला कोलार (कर्नाटक) में दो व्यक्तियों, 20 भेड़ों, एक सांड़ और दो गायों की मौत हो गई।

शेष पृष्ठ 10 पर

आतंकवादी हमलों का विध्वंसक कहर

डॉ0 प्रदीप कुमार मुखर्जी

विश्व भर में आतंकवादी गुटों एवं संगठनों के हमलों के बढ़ते जोर को अब पहले की अपेक्षा कहीं अधिक शिद्दतों के साथ महसूस किया जा रहा है। खासकर 11 सितम्बर 2001 को अमेरिका के न्यूयार्क शहर के वर्ल्ड ट्रेड सेंटर की इमारतों पर हुए आतंकवादी हमलों ने तो सभी राष्ट्रों की आँखें खोल दी हैं। आतंकवाद के कहर से अब कोई भी देश अछूता नहीं है, यह बात एकदम उन्मुक्त रूप से सामने आई है।

ऐसे हमलों से आतंकवाद की दहशत फैलने के साथ–साथ यह संदेश भी विश्व भर में जाता है कि आतंकवाद के तौर–तरीके तथा आतंकवादियों द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले हथियार भी अब अत्याधुनिक होते जा रहे हैं। रासायनिक तथा जैविक हथियारों के इस्तेमाल के अलावा आतंकवादी गुट एवं संगठन आजकल साइबर आतंकवाद का भी सहारा ले रहे हैं।

रासायनिक हथियार

रासायनिक हथियारों का इस्तेमाल प्राचीन काल से ही दुश्मन को युद्ध में पराजित करने के लिए होता रहा है। लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वप्रथम 425 ई.पू. में स्पार्टा एवं एथेंस के सैनिकों ने युद्ध में सल्फर (गंधक) का प्रयोग किया था। आधुनिक युग में रासायनिक अस्त्रों का प्रयोग सर्वप्रथम अमेरिकी गृहयुद्ध (1816–65) के दौरान हुआ जब ब्रिटेन ने क्लोरीन के साथ अन्य विषैले रसायनों का भी इस्तेमाल किया। लेकिन बड़े पैमाने पर विषाक्त गैसों का प्रयोग प्रथम विश्व युद्ध (1914–18) के दौरान किया गया। मार्च 1915 में अंग्रेजों की अस्थाई जीत के बाद जर्मन सेना ने ब्रिटिश सेना पर सिलिंडरों से 168 टन क्लोरीन गैस छोडी। इस गैस के असर से ब्रिटिश सैनिकों ने तेजी से उल्टियाँ करनी शुरू की तथा उनमें बुखार के लक्षण भी दिखाई दिए। इनमें से अनेक सैनिकों की बाद में मृत्यु हो गई।

इसके बाद 12 जुलाई 1917 को जर्मनी ने एंग्लो–फ्रेंच सेना पर मस्टर्ड गैस का प्रयोग किया। इस जहरीले गैस के असर से इन सैनिकों के शरीर पर बड़े–बड़े पीड़ादायक फफोले उग आए। उनकी आँखे भी लाल हो गईं तथा कुछ समय बाद उनमें से कई अंधत्व का शिकार भी हो गए।

जहाँ मस्टर्ड गैस (जिसे लेविसाइट भी कहा जाता है) से शरीर पर भयंकर पीड़ादायक फफोले उग आते हैं वहीं फासजीन गैस प्रभावित व्यक्ति में दमघोंटू अहसास उत्पन्न कर सकती है। यह गैस व्यक्ति के फेफड़ों को क्षतिग्रस्त कर उसे काल–कवलित करने में भी सक्षम होती है। हाइड्रोजन सायनाइड रक्त के माध्यम से मानव ऊतकों तक आक्सीजन के पहुँचने की प्रक्रिया में बाधा पहुँचाती है।

लेकिन रासायनिक हथियारों में सबसे खतरनाक स्नायु (नर्व) गैस को माना जाता है क्योंकि यह गैस सीधे स्नायु तंत्र को प्रभावित करती है। सन् 1930 के दशक में जर्मन वैज्ञानिकों ने स्नायु गैसों का विकास कीटनाशकों के रूप में किया था। बाद में नाजी सेना ने इनसे रासायनिक हथियारों का निर्माण किया। टबुन, सरीन तथा सोमन नामक नर्व गैसों की खोज हुई। ये गैसें मस्टर्ड गैस, फासजीन तथा हाइड्रोजन सायनाइड की अपेक्षा कई हजार गुना घातक होती हैं। नर्व गैस की सामान्य मात्रा भी लाखों–करोडों लोगों की जान लेने में सक्षम होता है।

रासायनिक हथियारों का निर्माण तथा प्रयोग अपेक्षाकृत सरल होता है तथा उन पर लागत भी कम आती है। उनको प्राप्त करना भी सहज होता है। तभी

आतंकवादियों तथा आतंकवादी संगठनों द्वारा रासायनिक अस्त्रों का बड़े पैमाने पर इस्तेमाल होता है।

जापान के टोक्यो शहर में 20 मार्च 1995 को ऑम शिनरिक्यों नामक एक आतंकवादी गुट ने लोकल ट्रेनों में सरीन गैस के तनु विलयन (डाइल्यूट सोल्यूशन) का इस्तेमाल किया। इस घटना में बारह लोगों की जानें चली गईं तथा सैकड़ों लोगों को अस्पताल में भर्ती होना पडा।

कार्बन मोनोक्साइड तथा हाइड्रोजन सायनाईड जैसी घातक गैसों का भी इस्तेमाल रासायनिक हथियारों के रूप में किया जाता है। जर्मनी ने द्वितीय विश्व युद्ध में 1940–43 के दौरान गैस चैम्बरों में पच्चीस लाख कैदियों पर कार्बन मोनोक्साइड तथा हाइड्रोजन सायनाइड के यौगिकों का व्यापक प्रयोग किया था।

रासायनिक हथियारों से प्रभावित व्यक्ति की अगर तुरंत चिकित्सा कर दी जाए तो उसकी जीवन रक्षा की जा सकती है। लेकिन अगर हजारों की तादाद में लोग रासायनिक अस्त्रों का शिकार हो जाएं तो सबको चिकित्सा–सुविधा तुरंत न मिल पाने के कारण उनकी जान को खतरा पैदा हो सकता है। रासायनिक कारखानों आदि में हुई दुर्घटनाओं में भी ऐसी नौबत आ सकती है। जैसे कि 3 दिसम्बर 1984 को भोपाल गैस कांड में मिक यानी मिथाइल आइसोसायनेट गैस के फैल जाने के कारण लाखों लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा था तथा कई शारीरिक रूप से प्रभावित हो गए थे। इसलिए प्रौद्योगिकीय रूप से उन्नत आज के इस आधुनिक युग में रासायनिकों तथा रासायनिक हथियारों का खतरा मानव जाति के ऊपर पुरजोर मँडरा रहा है।

जैविक हथियार

गंभीर रोगों के जीवाणुओं और विषाणुओं को जैविक हथियारों के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। आजकल आतंकवादी गुटों एवं संगठनों ने भी इनका इस्तेमाल करना शुरू कर दिया है। दुश्मन की सीमा में घुस कर इन जीवाणुओं और विषाणुओं को हवा में छोड़ा जा सकता है। कुछ अन्य माध्यमों जैसे कि डाक आदि द्वारा भी इन्हें भेजा जा सकता है। हाल ही में अमेरिका–अफगानिस्तान युद्ध में लिफाफों द्वारा एंथ्रेक्स जीवाणुओं के भिजवाए जाने के समाचार आए दिन प्राप्त हो रहे हैं। एंथ्रेक्स के अलावा हैजा, प्लेग के जीवाणु तथा चेचक, इबोला, हीमारेजिक ज्वर के विषाणु आदि का भी इस्तेमाल जैविक हथियारों का सहारा लेने वाले देशों तथा आतंकवादी गुटों एवं संगठनों द्वारा किया जा सकता है। दुश्मन के खेमे में जीवाणु या विषाणु को सीधे खोलने के अलावा कुछ आकर्षक पैकिटों तथा खिलौनों आदि में भी इन्हें भर कर भेजा जा सकता है।

जैविक युद्ध या जैविक आतंक मानव जाति के ऊपर मँडराता एक भयंकर खतरा है। हकीकत यह है कि जैविक हथियार की एक माइक्रो मिलीग्राम जितनी मात्रा ही लाखों लोगों को काल–कवलित करने के लिए पर्याप्त है। लेकिन समय रहते ही अगर जीवाणुओं या विषाणुओं का पता लग जाए तो एंटीबायोटिकों द्वारा प्रभावित व्यक्तियों का इलाज हो सकता है। लेकिन अगर जैविक हथियार के प्रभाव से एक साथ ही लाखों–करोड़ों लोग बीमार हो जाएँ तो फिर समस्या गंभीर रूप धारण कर सकती है क्योंकि इतने सारे लोगों को एक साथ चिकित्सा–सुविधा पहुँचा पाना दुष्कर हो सकता है।

जैविक युद्ध संबंधी शोध कार्य सबसे पहले जापान में सन् 1918 में शुरू हुआ। देखादेखी ब्रिटेन, कनाडा तथा अमेरिका ने भी शोध शुरू किया। सन् 1932 तक जापान तथा सन् 1934 तक ब्रिटेन ने जैविक हथियारों के निर्माण में काफी प्रगति कर ली थी। जहाँ जापान ने प्लेग, एन्थ्रेक्स, हैजा, टाइफाइड तथा पैराटाइफाइड जैसे घातक बीमारियों के कीटाणुओं को जैविक हथियारों के रूप में इस्तेमाल किए जाने संबंधी अपने शोध कार्यक्रम चलाए वहीं ब्रिटेन ने मुख्य रूप से एन्थ्रेक्स जीवाणु पर ही अपने शोध कार्य को सीमित रखा। आजकल जापान और ब्रिटेन के अलावा अन्य देशों ने भी जैविक हथियारों को विकसित करने में सफलता पाई है। रूस, अमेरिका के अलावा ईराक ने भी बड़ी संख्या में जैविक हथियारों का विकास किया है। खाड़ी युद्ध में ईराक द्वारा जैविक हथियारों का इस्तेमाल जगविदित है। भारत में भी कुछ

वर्षों पूर्व जो प्लेग फैला था उसे भी जैविक हथियारों की ही करतूत बताई जा रही है, हालाँकि इस बारे में प्रामाणिक रूप से कुछ भी कह सकना संभव नहीं है।

अब तो बोटूलिज्म नामक कीटाणु विष भी बन गया है जिसके असर से व्यक्ति को लकवा मार जाता है। आनुवंशिक अभियांत्रिकी ने ऐसे जीवाणुओं या विषाणुओं का विकास संभव बना दिया है जो प्रतिजैविक औषधियों के विरुद्ध पूर्ण प्रतिरोधिता अपने अंदर रखते हैं। यह गंभीर समस्या है क्योंकि इस तरह के जैविक हमलों से लोगों की रक्षा कर पाना सचमुच दुष्कर होगा।

साइबर आतंकवाद

सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में जब इंटरनेट हम पर धीरे–धीरे हावी होता जा रहा है तो आतंकवादियों ने नेट के जरिए भी अपने आतंकवाद का जाल बिछा दिया है। इसे ही साइबर आतंकवाद का नाम दिया जाता है। आतंकवादी संगठन सूचना तकनीक में दक्ष व्यक्तियों का सहारा लेकर उनके जरिए महत्वपूर्ण वेबसाइटों पर सेंधमारी कर या तो उन्हें समूल बदल देते हैं या फिर अर्थ का ही अनर्थ कर देते हैं। ऑनलाइन चेतावनी देकर भी आतंक फैलाने की कोशिश आतंकवादी गुटों एवं संगठनों द्वारा की जाती है।

कारगिल युद्ध के दौरान पाकिस्तानी साइबर सेंधमारों (हैकर) ने भारतीय सेना के महत्वपूर्ण वेबसाइटों के साथ छेड़खानी कर उन्हें बदल दिया तथा उन पर ऊल–जलूल बातें लिख दीं। भारत ही क्यों, अमेरिका में पेंटागन के कई वेबसाइटों पर भी इस तरह की छेड़छाछ के प्रयासों के समाचार सामने आए हैं।

साइबर आतंकवादी वेबसाइटों की सूचनाओं के साथ नाजायज छेड़छाड़ करने के अलावा जमीन पर चलती रेलगाड़ियों के बीच गंभीर दुर्घटना तक करवा सकते है। इस तरह उड़ते विमानों की हवा में टक्कर भी करवाई जा सकती हैं। दरअसल, साइबर आतंकवादी रेलगाड़ी और विमानों को दिशा–निर्देश देने वाले कम्प्यूटरों में वाइरस डाल देते हैं जिससे कि उन्हें सही दिशा–निर्देश न मिल पाने के कारण दुर्घटना या टक्कर हो जाती है।

साइबर आतंवादी बैंकिंग, चिकित्सा आदि महत्वपूर्ण सेवाओं यहाँ तक कि देश के अंतरिक्ष एवं रक्षा कार्यक्रमों को भी तहस–नहस करने की कोशिश कर सकते हैं। इस तरह कम्प्यूटरों और इंटरनेट द्वारा अफरा–तफरी मचा कर आतंकवाद फैलाने की कोशिश ही साइबर आतंकवादी करते हैं। अतः मानव जाति पर साइबर आतंकवाद का खतरा भी पुरजोर मंडरा रहा है।

इन सभी खतरों से निपटने के लिए जरूरी तौर–तरीके हमें खोजने होंगे। नहीं तो आतंकवादी हमलों के विध्वंसक कहर से बच पाना सचमुच कठिन होगा।

43, देशबन्धु सोसाइटी
15, पटपड़गंज, दिल्ली–110092

पृष्ठ 7 का शेष ......

संसार में एंथ्रेक्स की महामारी 1979 से 1985 के बीच जिम्बाब्वे में फैली थी जिसके दौरान 10,000 लोग इसके शिकार हुये थे। अमेरिका के मिशिगन विश्वविद्यालय में सूक्ष्मजैविकी के प्रोफेसर डॉ0 फिलिप हना का यह कथन महत्वपूर्ण है, "सौभाग्य से मनुष्य का शरीर एंथ्रेक्स के प्रति समुत्थानशील है और इसके संक्रमण के लिये हजारों बीजाणुओं की आवश्यकता पड़ती है।" उनकी मान्यता है, "एंथ्रेक्स हत्या का एक अक्षम अस्त्र है। यदि हजारों की संख्या में एंथ्रेक्स से संक्रमित पत्र डाक द्वारा भेजे जायें और सभी को खोल लिया जाये तो भी मात्र कुछ लोगों के ही रोगग्रस्त होने की संभावना होगी। प्रकृति ने हमें एंथ्रेक्स से रक्षा कवच प्रदान किया है।"

अध्यक्ष, जैव प्रौद्योगिकी विभाग व
अधिष्ठाता, विज्ञान संकाय
कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय
कुरूक्षेत्र–136 119

आतंकवाद का नया रूप

अमित बहल

आधुनिक युग में शान्तिप्रिय जीवन एवं स्वस्थ व सभ्य समाज के मार्ग में आतंकवाद सर्वाधिक प्रमुख बाधा है। आतंकवाद मुख्यतः व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के एक समूह द्वारा जनसाधारण, निजी व सार्वजनिक सम्पत्ति एवं सुविधाओं के विरुद्ध किया गया आपराधिक कार्य होता है। डॉ0 पेड्रो आर. डेविड लोबर्ज ने इसे परिभाषित करते हुये कहा है, "चाहे कोई भी देश हो, सामान्यतया आतंकवादी वही एक जैसी गति, प्रणाली और आयाम ग्रहण करता है। यहाँ तक कि आतंकवादियों की प्रणालियाँ भी एक समान होती हैं। वे अति महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों और राजनयिकों का अपहरण करते हैं, विमानों का अपहरण करते हैं, सार्वजनिक नेताओं की हत्या करते हैं, बमों का ब्लास्ट करते हैं और तोड़–फोड़ की कार्यवाहियाँ करते हैं। इस प्रकार की समस्त कार्यवाहियों के पीछे आतंकवादियों का एक सुनिश्चित लक्ष्य होता है 'आतंक स्थापित कर अपनी बात मनवाना।' आतंकवाद का उद्देश्य राजसत्ता को अस्थायित्त्व का शिकार बनाना, राजसत्ता का अवमूल्यन करना और जनता में इतना भय पैदा कर देना कि वह सरकार की क्षमता में सन्देह करने लगे। वर्तमान में आतंकवाद के इस परंपरागत रूप पर इससे अधिक लिखना, व्यर्थ होगा। चूँकि अमेरिका पर 11 सितम्बर 2001 के हमले और उसके जवाब में अमेरिका द्वारा आतंकवाद को समूल नष्ट करने की घोषणा के साथ अफगानिस्तान पर लगातार किये जा रहे हवाई हमले एवं अब कमाण्डो कार्रवाई पर इतना अधिक लिखा और कहा जा चुका है कि इसका अधिक विवेचन करना उचित नहीं होगा। परतु अमेरिका पर हमलों के बाद से दो प्रायः अप्रचलित से शब्द सामान्य जनता तक पहुँचे हैं जिसमें से एक है आत्मघाती हमले तथा दूसरा जैविक आतंकवाद।

समय के साथ–साथ आतंकवादियों द्वारा प्रयुक्त साधनों एवं कार्यपद्धतियों में भी भिन्नता आई है। इसके दो सर्वाधिक विध्वंसक रूप सामने आये हैं– प्रथम आत्मघाती हमले एवं द्वितीय जैविक आतंकवाद। आत्मघाती हमलों का सर्वाधिक प्रमुख एवं नवीन उदाहरण विगत माह 11 सितम्बर 2001 को अमेरिका पर हुये आतंकवादी हमले थे, जिसने संपूर्ण विश्व को झकझोर दिया है। आत्मघाती हमले से विश्व को परिचित कराने वाले दो शातिर आतंकवादी गुटों में लिट्टे (श्रीलंका) और अल–हमास (फिलिस्तीन) प्रमुख हैं। इन हमलों के समक्ष संपूर्ण विश्व की सुरक्षा एजेंसियाँ लाचार प्रतीत होती हैं क्योंकि इन्हें इसकी सूचना जब तक मिलती है तक तब एक अनहोनी घट चुकी होती है। एफबीआई के एक पूर्व अधिकारी के अनुसार, अब आतंकवादियों के पास कई गैर परंपरागत तरीके भी हैं, जिनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसके लिये हमें प्रो–एक्टिव अर्थात् अपनी ओर से पहल करके कार्यवाही करनी होगी। इसका एक ही तरीका है कि इनके ट्रेनिंग कैंपों को ही नष्ट किया जाये जहाँ से एक बार निकलने के बाद ये मानव बम काबू से बाहर होते हैं।

विगत कुछ वर्षों से संपूर्ण दुनिया में पारम्परिक और परमाणु हथियारों से अधिक आतंक और खतरा जैविक और रासायनिक आतंकवाद से फैला है यद्यपि वैज्ञानिक काफी समय से जैविक और रासायनिक आतंकवाद की चेतावनी देते रहे हैं। ईराक, जापान इत्यादि देशों में इस खतरे के प्रमाण भी समय–समय पर देखे गये तथापि इसको कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया गया। अतः जैविक हथियार चाहे आज सर्वाधिक चर्चा में हों परंतु बिल्कुल नये नहीं कहे जा सकते। इसका प्रयोग पहले व्यक्तिगत शत्रुता में किया जाता था। ओरेगान में एक बार इसी प्रकार मुर्गियों और संतरों में इंजेक्शन के द्वारा ऐसे जीवाणु पहुँचाये गये, जिनका असर काफी धीरे–धीरे होता था और लोग काफी समय बाद बीमार पड़ते थे। यह कार्य उन लोगों द्वारा किया जाता था जो

स्थानीय अधिकारियों से रुष्ट थे। उस समय शायद किसी ने यह कल्पना भी न की होगी कि भविष्य में यह इतने बड़े पैमाने पर आतंकवाद के लिये हथियार के रूप में प्रयोग किये जायेंगे।

जैविक आतंकवादी शस्त्र रूपी रोगाणु प्रयोगशाला में बड़े पैमाने पर विकसित एवं उत्पादित किये जा सकते हैं। आतंक फैलाने के लिये इन्हें वायु में फैलाने का प्रयत्न किया जाता है ताकि ये रोगाणु व्यक्ति की साँस के साथ शरीर में प्रवेश कर जायें। आतंकवादियों का प्रयास रहता है कि भीषण तबाही हेतु इस प्रकार के बीजाणुओं को किसी न किसी माध्यम (छिड़काव यंत्र) से हवा में फैलाया जाये। एफबीआई ने पता लगाया है कि वर्ल्ड ट्रेड सेन्टर पर हमला करने वाले आतंकियों ने रसायन के छिड़काव वाले विमान चालक का भी प्रशिक्षण प्राप्त किया था। यद्यपि विशेषज्ञों का मानना है कि भले ही कीटनाशक छिड़कने वाले विमानों पर संपूर्ण ध्यान केंद्रित किया जा रहा है तथापि इनका इस्तेमाल कीटनाशकों की धार छोडने के लिये किया जाता है। बीमारी के बीजाणु तभी कारगर सिद्ध होते हैं जब उन्हें धुन्ध की फुहार की भाँति फैलाया जाये। विमानों से ऐसा करना काफी कठिन होता है।

जैविक आतंकवाद में प्रयुक्त जैविक हथियार, बीमारियों के जीवाणु हैं, जो कि वायु, जल एवं खाद्य पदार्थों से मनुष्य द्वारा मनुष्य तक बड़ी ही खामोशी से पहुँचाये जा सकते हैं। फलतः इन्हें अत्याधुनिक युग के भीषण शस्त्रों की संज्ञा दी जा सकती है। इनमें रोगाणुओं द्वारा महामारी व अत्यंत विषाक्त रसायनों द्वारा महाविनाश सहित कम्प्यूटर के माध्यम से फैलाया जाने वाला साइबर आतंक व युद्ध के अवसर पर संचार माध्यमों को जामकर देना भी सम्मिलित है। इससे प्लेग, चेचक, वायरल, इन्फ्लुएन्जा, रक्तस्रावी बुखार, बॉटुलिज्म, टुलारेमिया और एंथ्रेक्स आदि रोगों को फैलाया जा सकता है। आज इन जैविक हथियारों का भय किसी भी हथियार के आतंक से अधिक अनुभव किया जा रहा है। आतंकवादियों द्वारा इसके प्रयोग के अनेक कारणों में से कुछ प्रमुख हैं– प्रथम इन शस्त्रों का निर्माण विधियाँ इंटरनेट पर सविस्तार उपलब्ध हैं। द्वितीय इंजीनियरिंग एवं बायोलाजी का साधारण विद्यार्थी भी इन हथियारों को प्रशिक्षण पश्चात् सरलता से विकसित कर सकता है। तृतीय इन शस्त्रों के प्रयोगकर्त्ता को ढूँढ पाना सरल नहीं है।

11 सितम्बर 2001 के आतंकवादी हमले के पश्चात् अमेरिका सहित विश्व के अनेक देशों में अब जैविक आतंकवाद, एंथ्रेक्स के रूप में दस्तक दे रहा है। इस बीमारी को डाक द्वारा फैलाया जा रहा है। 'सन' पत्रिका के फोटो संपादक 63 वर्षीय बॉब स्टीवेन्स की एंथ्रेक्स से मृत्यु हो चुकी है। उसके कम्प्यूटर की–बोर्ड में भी इस रोग के जीवाणु पाये गये हैं। इसके अन्य सहकर्मियों की भी जाँच की जा रही है। इससे अमेरिका में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व में भारी आतंक व्याप्त हो चुका है। अमेरिका में एंथ्रेक्स के अब तक 45 से भी अधिक मामले सामने आ चुके हैं। इसका हमला सर्वाधिक मीडिया से संबंधित लोगों पर हुआ है। यह आज सर्वसाधारण में सर्वाधिक चर्चा व वाद–विवाद का विषय है क्योंकि यह अमेरिका में आतंकी हमलों व अफगानिस्तान पर अमेरिकी हमलों के बाद सबसे अधिक उभरकर आया है।

एंथ्रेक्स प्रमुखतः पशुओं– भेड़, बकरी व ऊँट आदि का रोग है जोकि बेसिलस एंथ्रेसिस नामक जीवाणु से उत्पन्न होता है। यह जीवाणु किसी भी रोगग्रसित पशु से बाहर निकलने के बाद स्वतंत्र आक्सीजन के संपर्क में आते ही गोलाणु (स्पोर) में परिवर्तित हो जाते हैं और किसी भी तापमान या रसायन के लिये प्रतिरोधी हो जाते हैं। अतः इस रोगग्रस्त पशु का शव–परीक्षण नहीं किया जाना चाहिये। ये जीवाणु मिट्टी या पशु उत्पादों में कई वर्षों तक सुप्तावस्था में पड़े रहते हैं। इस अवस्था में इन्हें 'स्पोर या बीजाणु' कहा जाता है। ऐसे क्षेत्रों में पशुओं जैसे कि गाय, बकरी, भेड़, भैंस, ऊँट आदि के चरने से पशुओं में महामारी फैलती है। अधिकतर रोगग्रस्त पशुओं के बाल, चमड़े, ऊन आदि के संपर्क अथवा उसके अधपके मांस ग्रहण करने से इस रोग का संक्रमण होता है। मनुष्य में प्रमुखतः तीन रूपों में यह पाया जाता है। प्रथम मेलिग्नेंट कार्बन्कल कटी–फटी त्वचा में, संक्रमित रक्त या ऊतक के संपर्क में आने से त्वचा में फोड़ों का रूप धारण करता है। इस रूप में 25 प्रतिशत तक मृत्युदर हो सकती है। द्वितीय पल्मोनरी एंथ्रेक्स यानी वूल सोर्टर्स डिसीज– स्पोर ग्रसित धूल से साँस द्वारा मनुष्य के

श्वसनतंत्र अथवा फेफड़ों में यह स्पोर प्रवेश कर जाते हैं। बॉव स्टीवेन्स की मृत्यु भी इसी कारण हुई। तृतीय रूप इन्टेस्टाइनल एंथ्रेक्स अधपके मांस के खाने से आँतों में स्थापित होता है। इसके होने की संभावना कम ही होती है। यदि एंथ्रेसिस के बैक्टीरिया साँस अथवा भोजन के माध्यम से शरीर में प्रवेश करते हैं तो व्यक्ति की मृत्यु की संभावना 95 प्रतिशत तक रहती है। त्वचा के माध्यम से शरीर में प्रवेश करने पर व्यक्ति की 25 प्रतिशत मृत्यु की संभावना रहती है। एंथ्रेक्स के जीवाणु एक सदी से भी अधिक समय तक जीवित रह सकते हैं।

एंथ्रेक्स के लक्षण फ्लू की भांति होते हैं। आरंभ में बीमारी को समझने में कठिनाई होती है, रोगी को बुखार, थकावट, खाँसी व श्वास लेने में परेशानी होती है। जैसे–जैसे शरीर में एंथ्रेक्स के रोगाणु फैलते हैं, शरीर के सभी प्राकृतिक छिद्रों से रक्तस्राव होने लगता है। इसीलिये यह अत्यधिक प्राणघातक होता है। इसके लक्षण मिलने की समय सीमा भी निश्चित नहीं है। कम से कम 12 घण्टे और अधिकाधिक दो माह बाद व्यक्ति के एंथ्रेक्स से पीड़ित होने के लक्षण का पता चलता है। सामान्यतः इसके लक्षण 1–7 दिनों के अन्दर स्पष्ट होने लगते हैं। इस रोग का बचाव ही सर्वोत्तम उपाय है। इससे बचाव के लिये काफी समय से पेनिसिलीन का प्रयोग होता रहा है। इसके अतिरिक्त, कुछ एंटीबायोटिक दवायें भी इसके इलाज में इस्तेमाल की जाती हैं, परंतु ये दवायें मात्र रोग की आरंभिक अवस्था में ही कारगर सिद्ध होती हैं क्योंकि यह बैक्टीरिया द्वारा फैलाये गये रोगाणु से ही लड़ सकती हैं। अमेरिका में एक निजी कम्पनी इसके टीके बनाती है किंतु सामान्यतः मात्र सेना के रोगग्रस्त व्यक्तियों हेतु एन्टीबायोटिक्स आदि जैसे कि पेनिसिलीन, टेट्रासाइक्लिन, सिप्रोफ्लोक्सासिन आदि के लिये।

एंथ्रेक्स के संबंध में कुछ भ्रांतियाँ हैं। सर्वाधिक प्रमुख भ्रांति है कि यह संक्रमण रोग है जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में, दूसरे व्यक्ति से तीसरे व्यक्ति में और समूचे क्षेत्र में फैल जाता है और शीघ्र ही लोग मरने आरंभ हो जाते हैं। परंतु वैज्ञानिकों का मत है कि एंथ्रेक्स संक्रामक रोग अथवा छूत की बीमारी नहीं है और इसके जीवाणु नमी में बेकार हो जाते हैं।

आतंकवादियों द्वारा जैविक हथियारों में एंथ्रेक्स का चुनाव इसलिये किया गया क्योंकि इसके जीवाणु जिद्दी स्वभाव के होते हैं। ये कड़ी धूप, कीटनाशक दवाओं व तेज गर्मी को भी सरलता से वहन कर लेते हैं यद्यपि प्लेग के जीवाणु कुछ घंटे धूप में रहने पर ही बेकार हो जाते हैं। आतंकवादियों का लक्ष्य होता है कम से कम प्रयास में अधिकाधिक लोगों को नुकसान पहुँचाना इसीलिये एंथ्रेक्स को चुनकर आतंकवादी इस बीमारी के विषाणु पाउडर की तरह किसी कागज (पत्र) पर चिपकाकर भेज रहे हैं। अमेरिका में एक सीनेटर को पत्र के रूप में भेजा गया लिफाफा खोलने पर उसके 20 कर्मचारी एंथ्रेक्स रोग के शिकार हो गये। इसका आतंक इतना बढ़ गया है कि प्रतिनिधि सभा भवन को बंद कर दिया गया और उसकी सफाई की जा रही है। लोगों को अपनी डाक सावधानी से खोलने की चेतावनी दी गई है। भारत में भी अनेक स्थानों पर संदिग्ध पाउडर वाले लिफाफे (पत्र) मिलने से दहशत है परंतु किसी भी मामले में अभी एंथ्रेक्स की पुष्टि नहीं हुई है। सरकार ने इससे निपटने हेतु पूरी सक्षमता का दावा किया है परंतु देश में स्थित चिकित्सा व्यवस्था से ऐसा भरोसा तो नहीं होता। हाँ, दिखावे के लिये औपचारिकतायें अवश्य पूरी की गई हैं। इसके अतिरिक्त, रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन (डीआरडीओ) की ग्वालियर स्थित प्रयोगशाला रासायनिक एवं जैविक हमलों का सामना और बचाव करने के उपाय विकसित करने की दिशा में विगत 20 वर्षों से कार्यरत है। और इसने बचाव के आवश्यक उपकरण तथा कपड़े आदि विकसित कर लिये हैं। तथापि विशेषज्ञों का मानना है कि एंथ्रेक्स के महामारी का रूप लेने की कोई भी संभावना नहीं है क्योंकि एंथ्रेक्स के बैक्टीरिया का फैलना आसान होता है परंतु उसका हथियार के रूप में इस्तेमाल बहुत ही कठिन है।

एंथ्रेक्स से पूर्व भी अनेक बार आतंकवादियों द्वारा रासायनिक एवं जैविक शस्त्रों का उपयोग किया जाता रहा है। 1970 में यूरोप में चेचक महामारी फैलाने एवं 1979 में सोवियत संघ की जैविक हथियार प्रयोगशाला से दुर्घटनावश एंथ्रेक्स विषाणुओं के लीक होने आदि की घटनायें घट चुकी हैं। 1990–1995 के मध्य तीन से भी अधिक बार टोक्यो (जापान) और वहाँ के अमेरिकी सैन्य

स्थलों पर बोट्यूलिनम नामक जीवाणु से हमले किये गये थे यद्यपि ये हमले सफल नहीं हो सके। बोट्यूलिनम रोग से श्वास पेशियाँ लकवे से ग्रस्त हो जाती हैं तथा चौबीस घंटे में ही पीड़ित मनुष्य की मौत हो जाती है। 1991 में हुये खाडी युद्ध के पश्चात् ईराक ने संयुक्त राष्ट्र संघ जांच समिति के समक्ष स्वीकारा था कि उसने बोट्यूलिनम की 19,000 लीटर मात्रा का उत्पादन किया था। इसकी एक तिहाई मात्रा ही संपूर्ण विश्व के विध्वंस हेतु पर्याप्त है। 1995 में टोक्यो (जापान) के भूगत मार्ग में अउम शिनरिक्या नाम धार्मिक समुदाय ने नर्व गैस छोड़ी थी जिसमें 12 लोगों की मृत्यु और हजारों लोग जख्मी हो गये थे। कुछ लोगों का मानना है कि रासायनिक हथियार जैसे कि सरीन व बीएक्स गैसें आदि जैविक हथियारों से भी अधिक खतरनाक साबित हो सकते हैं। जैविक हथियारों के मुकाबले इसका सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसे एकत्र करके हथियार के रूप में प्रयोग करना आसान है। अतः अब मनुष्य जाति को ऐसे युद्ध हेतु तैयार रहना होगा जो कि प्रलयंकारी परंतु अदृश्य शस्त्र से लड़ा जायेगा न कि अब तक प्रयुक्त परंपरागत व आधुनिक हथियारों से।

आधुनिक युग में, विश्व में विज्ञान व तकनीक का इतना अधिक विकास हो चुका है कि जैविक एवं रासायनिक हथियारों को बनाना, उन्हें एकत्र करके प्रयोग करना गोपनीय रखा जाना संभव नहीं है। ईराक, सूडान व लीबिया आदि देशों व आतंकवादी संगठनों के पास ऐसे भीषण अस्त्रों के होने की बात कही जा रही है। हालाँकि संयुक्त राष्ट्र संघ के बैनर तले इनके निर्माण व प्रयोग के विरुद्ध संधियाँ हुई परंतु आतंकवादी गतिविधियों में संलग्न और उसे बढ़ावा देने वाले देश अपने स्वार्थों हेतु इस पर हस्ताक्षर करने को तैयार नहीं हुये। परंतु यह सदैव स्मरण रखना चाहिये कि ये शस्त्र संपूर्ण मानवता के विरुद्ध हैं। जब तक जैविक एवं रासायनिक हथियार हैं, इसका खतरा सदैव मण्डराता रहेगा। अतः जब आतंकवादी अपने अस्तित्व को ही खतरे में पायेंगे तब वे इनका प्रयोग कर बड़े पैमाने पर विश्व में विध्वंस मचा सकते हैं। अतः संपूर्ण दुनिया को इसके विरोध में एकजुट होना होगा, इन शस्त्रों के विरुद्ध विश्वव्यापी अभियान चलाकर विभिन्न देशों की सरकारों तथा जनसाधारण को सजग करना ही होगा तथा जांच एजेंसियों को अपने परंपरागत तरीके त्यागकर, नई एवं असरदान तकनीकें अपनाकर सक्षम खुफियातंत्र को विकसित करना होगा। खुफिया तंत्र को विश्वस्तर पर सूचनाओं के आदान–प्रदान, भागीदारी व सहयोग से भावी जैविक व रासायनिक खतरों से निपटने में सहायता मिल सकती है।

📖 **272ए, न्यू लायलपुर कालोनी,**
सोम बाजार, चन्द्र नगर,
दिल्ली–110 051

पृष्ठ 6का शेष ...

पदार्थों एवं पेयजल को विषाक्त करने के लिये किया ही था। इसके दो स्ट्रेन (प्रजातियाँ) क्रमशः आंत्र शोध व मियादी बुखार के माध्यम से शत्रु की इच्छाशक्ति को दुर्बल कर देने में सहायक सिद्ध हुये हैं। यद्यपि मृत्यु चार प्रतिशत से अधिक की नहीं होती। **शिगेला** बैक्टीरिया भी 48 घंटों के बाद खूनी पेचिश के माध्यम से ऐसा ही करता है और द्वितीय युद्ध में जापानी इसका भी परीक्षण कर चुके हैं। **आर. प्रोवाज़ेकाइ** भी वायु माध्यम से आक्रमण कर महामारी के रूप में टायफायड फैला सकता है, मृत्यु दर 10–40 प्रतिशत रहती है।

युद्धों में माँ काली का खप्पर कभी भी सूखने न पाये इसके लिये आज के अनेकों वैज्ञानिक सतत् प्रयत्नशील हैं। युद्ध ही उनका धर्म है और शत्रु का दैहिक कष्ट अथवा मरण, परम कर्त्तव्य। इसके लिये अपनी आत्मा को वह अपने पाशविक ज्ञान से पूर्णरूपेण आच्छादित कर चुके हैं। अब सम्पूर्ण मानवता युद्धोन्मादियों के रहमोकरम पर है। भविष्य में किसी बुद्ध या गांधी का अवतरण ही उसे नैराश्य से गहन गह्वर से मुक्ति दिला सकता है।

📖 **श्री वेंकटेश भवन**
445–बी, देव कॉलोनी
रोहतक–124 001

बढ़ते साइबर अपराध कारण और रोकथाम

✍ राकेश पाठक

भारत की सर्वोच्च न्यायालय के एक वकील रोडनी डी राइडर ने कम्प्यूटर टुडे नामक एक अंग्रेजी मासिक के जनवरी 2001 के अंक में "सर्च इंजन लायबिलिटीः इज रेडिफ गिल्टी?" शीर्षक से लिखे एक लम्बे आलेख में पुणे की अदालत में चल रहे एक मामले का हवाला दिया है जिसमें वहाँ के न्यायिक मजिस्ट्रेट, वाई.एस.भोंसले ने वेबसाइट पर अश्लील चित्रों का सम्पर्क सूत्र उपल्बध कराने के लिए छः डॉक्टरों को तलब किया। इस वेबसाइट पर पहुँचने का रास्ता रेडिफ डॉट कॉम के द्वारा है। प्रश्न है कि इन्टरनेट सर्विस प्रोवाइडर (ISP) अपराधी है या सामग्री उपलब्ध कराने वाली वेबसाइट? मामला अदालत में है।

इसी लेख में रोडनी डी राइडर ने बताया कि साइबर अपराधों से जुड़े सर्वाधिक मामले अमेरिकी अदालतों में चल रहे है और लगभग सभी देशों में साइबर अपराधों को ध्यान में रखते हुए कानून बनाने की प्रक्रिया चल रही है।

वर्ष 2000 इन्टरनेट के लिए बहुत भारी गुजरा, जब मई 2000 में 'आई लव यू' नामक वाइरस ने पूरी दुनिया के कम्प्यूटर में संग्रहीत कीमती सूचनाओं को नष्ट–भ्रष्ट करके अरबों डालरों का नुकसान कर दिया। विश्वस्त सूत्रों के अनुसार इस समय साइबर स्पेस में 60,000 से भी अधिक वाइरस हैं। कम्प्यूटर विशेषज्ञों के अनुसार इन वाइरसों द्वारा जहाँ सूचनाओं के नष्ट होने से अरबों डालर की हानि होती है वहीं इन वाइरसों से बचने के लिए किये जा रहे प्रयासों में भी विश्व की अर्थव्यवस्था का एक बहुत बड़ा भाग व्यय हो जाता है। इन्हीं झंझटो से बचने के लिए गत वर्ष अगस्त 2000 में भारत सरकार ने सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम पारित करके सूचना प्रौद्योगिकी को भी अब कानून के दायरे में ले लिया है तथा साइबर अपराधियों को पकड़ने और सजा देने के लिए "साइबर क्राइम इन्वेस्टिगेशन सेल" और "साइबर क्राइम रिसर्च एण्ड डिवेलेपमेन्ट यूनिट" की स्थापना की है। हर समाज अपने लोगों के लिए कुछ आचार संहिता बनाता है। अब तक कोई भी समाज ऐसा नहीं मिला है जिसमें सभी लोगों द्वारा आचार संहिता का पूरी तरह से पालन किया गया हो। अच्छाई और बुराई की लड़ाई बराबर चलती रहती है और साइबर स्पेस, अपराधियों का अपनी घृणित गतिविधियाँ फैलाने का एक और सशक्त माध्यम मिल गया है।

अपराध वैज्ञानिकों का मानना है कि अधिकांश अपराध मूलतः तीन कारणों से होते हैं– जर, जोरू और जमीन। अब इन्टरनेट पर जमीन की छीना झपटी के अपराध तो हो नहीं सकते लेकिन धन और स्त्री जरूर कारण बन सकते हैं। यदि सूचनाओं और आँकडों को सम्पदा माना जाय तो इसकी चोरी से सम्बन्धित अपराधों को किसी अलग श्रेणी में नहीं रखना पड़ेगा।

इन्टरनेट पर अभी तक सबसे प्रचलित अपराध तीन तरह के हैं – एक, जानबूझ कर वाइरस संक्रमित करना, दो, महत्वपूर्ण सूचनाओं व आँकड़ों की चोरी करना अथवा नष्ट करना और तीन, नैतिकता का उल्लंघन करने वाली वेबसाइटों का निर्माण करना व प्रसारित करना।

पर्सनल कम्प्यूटर में तो वाइरस ज्यादातर फ्लॉपी या सी.डी. के माध्यम से आक्रमण करते हैं लेकिन इन्टरनेट से जुड़े कम्प्यूटर पर इसके संक्रमण के और तरीके भी हो सकते हैं– जैसे, वेबसाइट पर विचरण करते समय कोई लुभावना संदेश आपको आकर्षित कर सकता है उसके लुभावन में आकर आप उस पर तुरन्त माउस क्लिक करते हैं बाद में पता चलता है कि आपका कम्प्यूटर वाइरस से संक्रमित हो गया है। कुछ वाइरस ई–मेल संदेश के रूप में भी दिख सकते हैं– जैसे प्रेम पत्र संदेश, जिसको पढ़ने का लालच आपके कम्प्यूटर के लिए आत्मघाती सिद्ध हो सकता है। अब तक इस प्रकार के 12 संदेशों की श्रृंखला

खोजी जा चुकी है। वाइरस या इसके प्रोग्राम कम्प्यूटर के प्रोग्रामों से जुड़कर अपनी घातक हरकतें शुरू कर देते हैं– जैसे महत्वपूर्ण सूचनाओं को नष्ट–भ्रष्ट करना, व्यर्थ–अनर्थ के संदेश देना, सॉफ्टवेयर को जाम कर देना आदि।

साइबर अपराधों में हैकिंग सबसे अधिक प्रचलित हरकत है। कम्प्यूटर के संदर्भ में हरकत सॉफ्टवेयर स्तर पर होती है। हैकिंग के द्वारा अवांछित तत्व आपके गुप्त संदेशों जैसे लॉग–इन, पासवर्ड, क्रेडिट कार्ड का नम्बर आदि जानने की कोशिश करते हैं। यह है तो शरारती हरकत, लेकिन इसे बहुत की कुशाग्र बुद्धि के सॉफ्टवेयर प्रोग्रामर ही कर सकते हैं।

अपने कम्प्यूटर को किसी भी तरह के आक्रमण और झटकों से बचाने के लिए या बचाये रखने के लिए अनेक सुरक्षात्मक सॉफ्टवेयर भी बनाए गये हैं जिन्हें एण्टी वाइरस वैक्सीन या सॉफ्टवेयर कहते है। जिनमें सबसे अधिक प्रचलित हैं – फॉयर वॉल, मैक एफी वी शील्ड, नार्टन यूटिलिटी आदि। त्वरित ई–सुरक्षा प्रदान करने के लिए वेबसाइट पर भी कुछ एण्टीवाइरस सॉफ्टवेयर उपलब्ध हैं उनमें से अलादीन डॉट कॉम अधिक चर्चित और विश्वसनीय है।

अपने कम्प्यूटर को साइबर अपराधियों से सुरक्षित रखने के लिए अच्छे प्रकार के एण्टीवाइरस वैक्सीन का उपयोग करना चाहिए और उसको लोड करते समय सॉफ्टवेयर द्वारा पूछे गये सभी प्रश्नों के उत्तरों को क्रमवार और सोच विचार कर फीड करना चाहिए। इसमें की गयी असावधानी आपके कम्प्यूटर के लिए आत्मघाती सिद्ध हो सकती है। सावधानी के तौर कुछ और बातें ध्यान में रखने योग्य हैं जैसेः–

– पासवर्ड के रूप में अपना नाम, अपनी प्रेमिका, प्रेमी पत्नी या बच्चों का नाम न डालें क्यों कि हैकिंग करने वाले अनुभाग के रूप में इन पर परीक्षण करेंगे।
– पासवर्ड में जन्म तिथि न डालें।
– पासवर्ड हेतु अक्षर, अंक और अन्य चिन्हों (जैसे कॉमा, कोष्ठक, डॉलर चिन्ह, प्लस का चिन्ह) का मिला जुला प्रयोग करना चाहिए।
– लुभावनी, अनजानी वेबसाइटों का लालच आपके कम्प्यूटर के लिए श्राप साबित हो सकता है इसलिए उन पर न लपकें।
– अपने क्रेडिट कार्ड का नम्बर गुप्त रखें या कम्प्यूटर पर रखें ही नहीं अन्यथा पता चलेगा कि आपका क्रेडिट कार्ड खुद ही खर्चा कर रहा है।
– हैकिंग प्रकृति वालों से सम्बन्ध ही न रखें।
– नियमित रूप से अपने कम्प्यूटर को स्टिमुलेटेड संक्रमणों हेतु परीक्षण करते रहना चाहिए।
– कम्प्यूटर को हार्ड डिस्क से बूट करना चाहिए न कि फ्लॉपी डिस्क से।
– बुलेटिन बोर्ड से प्रोगग्रम डाउनलोड करते समय पूरी सावधानी रखनी चाहिए क्योंकि यह एक ऐसी जगह है जहाँ सभी प्रकार के उपभोक्ता पहुँचते हैं। इससे डाउनलोड प्रोग्राम को पहले खाली व फॉरमेटेड फ्लॉपी डिस्क मे रखकर जाँच परख लेना चाहिए। अगर प्रोग्राम वाइरस रहित है तभी इसे फ्लॉपी डिस्क से हार्ड डिस्क में लोड करना चाहिए अन्यथा फ्लॉपी डिस्क को समूल नष्ट कर देना चाहिए।

अन्ततः साइबर अपराधियों से बचने के लिए अब तक ईजाद उपायों मे एक ही सबसे सशक्त उपाय है, वह है– सावधानी। वास्तव में इन्टरनेट पर किये जा रहे किसी भी तरह के अपराध से सुरक्षित रहने के लिए वैयक्तिक प्रयत्नों का अपना महत्व है लेकिन इसके लिए अब राष्ट्रीय नहीं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय कानून की आवश्यकता है। क्योंकि साइबर स्पेस असीम है, इसलिए अपनी सीमा में न आने वाले व्यक्तियों पर देशों की सत्ता व अधिकारों को चुनौती दी जा सकती है। इसके अलावा अज्ञानताओं और छद्मनामों की समस्या साइबर स्पेस में अत्यन्त व्यापक रूप ले चुकी है। जरूरत है दुनिया के सभी देशों के कानून प्रतिनिधि एक मंच पर इकट्ठा होकर कोई अन्तर्राष्ट्रीय कानून बनायें अन्यथा जिस दिन सूचना व्यवस्था में गड़बड़ी पैदा करके बिजली, पानी की सप्लाई, परिवहन और बैंकिंग जैसी आवश्यक सुविधाओं को इन अपराधियों द्वारा भंग कर दिया गया तो उससे होने वाला नुकसान और आतंक किसी बम विस्फोट से होने वाले विनाश से निःसंदेह कई गुना अधिक होगा।

ई–416, हुडको कालोनी,
कमला नेहरू नगर, जोधपुर

मल्टीमीडिया

ऋचा अग्रवाल

'मल्टीमीडिया' कम्प्यूटर की बदलती दुनिया की एक नई रोमांचक और लोकप्रिय प्रस्तुति का नाम है। आज मल्टीमीडिया एक जाना–पहचाना शब्द बनता जा रहा है और इसके बारे में चर्चा हो रही है न सिर्फ कम्प्यूटर–कक्षाओं और सूचना प्रौद्योगिकी में बल्कि सिनेमा, विज्ञापन, कारपोरेट, फैशन–डिजाइनिंग और शिक्षा के क्षेत्र में भी।

वास्तव में मल्टीमीडिया का क्षेत्र जीवन के हर वर्ग से सम्बन्धित हो गया है। नित नए हो रहे प्रयोग इसे और भी अधिक बेहतर बना रहे हैं जिससे नवीन क्षेत्रों में इसका उपयोग सुनिश्चित हो सके।

'मल्टीमीडिया' शब्द दो शब्दों का मेल है – 'मल्टी' यानि बहुत सी और 'मीडिया' यानि माध्यम। इसका सम्बन्ध प्रमुखतया कम्प्यूटर से है। कम्प्यूटर द्वारा जब बहुत से मीडिया यानि माध्यमों से सम्प्रेषण किया जाता है तो उसे मल्टीमीडिया नाम दे दिया जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि कम्प्यूटर की मदद से लिखे हुए शब्द, आवाज, चित्र और वीडियो के मिले–जुले प्रयोग का नाम है– 'मल्टीमीडिया'।

'मल्टीमीडिया' नाम में ही समाहित दूसरा गुण है – 'इन्टरएक्टिविटी' अर्थात् पारस्परिक आदान–प्रदान करने की क्षमता। इसकी मदद से आप बने हुए प्रोग्राम में अपनी मर्जी से बदलाव ला सकते है; इसकी गति घटा–बढ़ा सकते हैं। इसी कारण बहुत से लोग 'मल्टीमीडिया' को टी.वी. और कम्प्यूटर का मिश्रण मानते हैं। उदाहरण के लिए टी0वी0 में आ रहे समाचार को यदि आप 'मल्टीमिडिया' के सन्दर्भ में बदलेंगे तो आप समाचार वाचक से अपने इच्छित प्रकार के समाचार सुन सकेंगे या किसी समाचार के विस्तार में जाना चाहें तो आपको बस कम्प्यूटर के 'की–बोर्ड' के एक बटन या 'माउस' की एक क्लिक का ही प्रयोग करना होगा।

'मल्टीमिडिया' में शब्द, चित्र, आवाज और वीडियो का अद्भुत संयोजन किया जाता है जो देखने वालों को आकर्षित करता है। साथ ही इच्छित बदलाव करने की सामर्थ्य इसे अनेक क्षेत्रों में बहुत ही उपयोगी बना देती है। उदाहरण के लिए शिक्षा का ही क्षेत्र लें। हमारा भारत देश बहुत विशाल है और उच्च शिक्षा या माध्यमिक स्तर की शिक्षा के संस्थान अत्यन्त अपर्याप्त हैं। 'मुक्त विश्वविद्यालय व्यवस्था' (Open University System) और 'पत्राचार शिक्षा' द्वारा इस कमी को पूरा करने की कोशिश की जा रही है।

दूसरी ओर सिर्फ किताबों से ज्ञान प्राप्त करना न केवल अधिक श्रमसाध्य होता है वरन् अरुचिकर भी होता है। 'मल्टीमीडिया' का प्रयोग इस दिशा में भी अत्यन्त कारगर है।

विद्यार्थियों को यदि प्राथमिक चिकित्सा की जानकारी देना है तो इससे सम्बन्धित चित्र, शब्द, ध्वनि के वीडियो–संयोजन से बने 'मल्टीमीडिया' आधारित कार्यक्रम को सी.डी. प्लेयर द्वारा बार–बार दिखा कर छात्रों के समक्ष बहुआयामी जानकारी का प्रत्यक्षीकरण किया जा सकता है। छात्र को यदि कोई जानकारी ठीक प्रकार से समझ नहीं आ रही है तो वह 'मल्टीमीडिया' की मदद से 'हाइपर लिंक' द्वारा उस विषयवस्तु के उस बिन्दु के विस्तार में भी जा सकता है और तथ्य समझ में आते ही वापस मुख्य प्रोग्राम पर सिर्फ की–बोर्ड के एक बटन या माउस की सिर्फ एक क्लिक से आ सकता है।

मजे की बात तो यह भी है कि इतनी वृहद् जानकारी के लिए मोटी–मोटी किताबों को रखने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। एक काम्पैक्ट डिस्क (सी.डी.) में ऐसे 1000 से भी ज्यादा प्रोग्राम आ सकते हैं।

'मल्टीमीडिया' के समुचित उपयोग के लिए पेन्टियम प्रोसेसर कम्प्यूटर–हार्डवेयर पहली आवश्यकता है। कई कम्पनियाँ विशेष रूप से 'मल्टीमीडिया' के लिए ही अत्यन्त शक्तिशाली प्रोसेसर लाई हैं। सशक्त व त्वरित सक्षम प्रोसेसर के अतिरिक्त 8 या 16 मेगाबाइट का 'गणितीय को–प्रोसेसर' होना भी आवश्यक है।

मल्टीमीडिया' पी.सी. (पर्सनल कम्प्यूटर) के पास सुपर वीडियो ग्रॉफिक्स एरे (SVGA Casd) होना भी वीडियो (साफ चमकदार चित्र एवं स्पष्ट ध्वनि के समुचित संयोजन) की उत्तम गुणवत्ता के लिए आवश्यक है। चूँकि 'मल्टीमीडिया' में ग्रॉफिक–यूजर इन्टरफेस' का बहुतायत से प्रयोग होता है और सी.डी. रोम (C.D. ROM) का उपयोग प्रोग्राम–संग्रह करने के लिए किया जाता है अतः 'माउस' और सी.डी. रोम–ड्राईव (C.D. ROM Drive) का होना तो मल्टीमीडिया के लिए आवश्यक है ही; ध्वनि के लिए स्पीकर एवं 'साउन्ड कार्ड', चित्रों को डिजिटल के रूप में परिवर्तित करने के लिए 'स्कैनर (Scanner)' और 'वीडियो कैप्चर बोर्ड' 'मल्टीमीडिया पी.सी.' के लिए अनिवार्य है।

'मल्टीमीडिया' के लिए अब साफ्टवेयर की बात आती है। आज बाजार में विभिन्न प्रकार के अच्छे साफ्टवेयर उपलब्ध हैं जैसे 'पेन्टब्रश', फोटोशाप', 'थ्री डी. स्टूडियो', 'मास्टर ब्लॉस्टर', 'कोरल ड्रॉ', एनीमेटर', फोटोफिनिश', 'साउन्ड ब्लॉस्टर' इत्यादि। इन सभी साफ्टवेयर की अपनी–अपनी विशेषताएँ हैं।

बाजार में ऐसे साफ्टवेयर भी उपलब्ध हैं जो इन अलग–अलग बने 'मल्टीमीडिया–तत्वों' को परस्पर मिला कर समग्र रूप में भी प्रस्तुत कर सकते है। 'इमेजिनेट', 'एपिल हाइपर कार्ड', प्रोफेशनल आइकन ऑथर', 'मल्टीमीडिया–डाइरेक्टर' आदि ऐसे ही साफ्टवेयर हैं। 'मल्टीमीडिया' के इन साफ्टवेयर प्रोग्रामों में कुछ ग्रॉफिक्स (चित्र बनाने सम्बन्धी) तो कुछ एनीमेशन करने (निर्जीव चित्रों में जीवन्त गतिशिलता उत्पन्न करने) से सम्बन्धित होते हैं। 'डिजाइनर' तो एक ऐसा ही साफ्टवेयर है जो विशेष रूप से ग्रॉफिक आर्टिस्ट और टेक्निकल इलस्ट्रेटर के लिए ही बना है। इसी प्रकार 'फोटोपब्लिशर' नामक साफ्टवेयर 'व्यावसायिक फोटो–निर्माण' में मददगार है जिसकी मदद से न केवल तस्वीर के दोष 'मास्क' किए जा सकते हैं, तस्वीर को 'रिटच' किया जा सकता है वरन् 30 से भी ज्यादा 'फिल्टर' और 'स्पेशल इफेक्ट्स' दिए जा सकते हैं और तस्वीरों को 50 से भी अधिक 'टेक्स्चर' में ढाला जा सकता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'मल्टीमीडिया' के सबसे आवश्यक तत्वों में से प्रथम तत्व 'शब्द' है। लगभग हर मल्टीमीडिया–प्रोग्राम में 'शब्द'(Textural Information) का प्रयोग होता है। इस 'टेक्स्ट (Text)' को अलग–अलग आकार (Size) में अलग–अलग प्रकार के 'फॉन्ट (Font)' अर्थात् छोटे–बड़े आकर्षक आकार–प्रकार के अक्षर–विन्यास से शब्द (Text)–रचना की जाती है।

'मल्टीमीडिया' का दूसरा प्रमुख व रोचक तत्व है–'ग्रॉफिक्स'। 'मल्टीमीडिया–प्रोडक्शन' का आधारभूत तथ्य यह है कि ज्यादा मात्रा में लिखित सामग्री में लोग रुचि नहीं लेते हैं और मानवीय स्वभाव के बारे में भी कहा जाता है कि किसी विषय को उसे बेहतर ढंग से तभी समझाया जा सकता है जब उसमें चित्रों (ग्रॉफिक्स) का समावेश हो। इसी कारण 'मल्टीमीडिया' में बहुतायत से ग्रॉफिक्स का उपयोग किया जा रहा है। ये चित्र कम्प्यूटर में 'बिटमैप इमेज' और 'वेक्टर इमेज' के रूप में रखे जाते हैं। चलती–फिरती (अर्थात् एनीमेटेड) तस्वीरें और कार्टून भी मल्टीमीडिया के अनिवार्य अंग हैं। द्विविमीय (Two Dimensional) एनीमेशन के साथ–साथ त्रिविमीय (Three Dimensional) एनीमेशन भी लोकप्रिय है।

मल्टीमीडिया का तीसरा आवश्यक तत्व है 'ध्वनि' अर्थात् 'डिजिटल ऑडियो' जिसके बगैर

डॉ. गोरख प्रसाद विज्ञान पुरस्कार 2001 घोषित

निम्नलिखित विज्ञान लेखकों को वर्ष 2001 में 'विज्ञान' मासिक में प्रकाशित लेखों के आधार पर डॉ. गोरख प्रसाद विज्ञान पुरस्कार प्रदान किया गया है–

1. **डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र (मुम्बई)**
2. **डॉ. प्रदीप कुमार मुकर्जी (नई दिल्ली)**
3. **श्री राकेश पाठक (जोधपुर)**

– सम्पादक

'मल्टीमीडिया' की पूरी सामर्थ्य को उपयोग में लाना मुश्किल है।

जैसा कि हम जानते हैं ध्वनि का संप्रेषण हवा में तरंगों के रूप में होता है। माइक्रोफोन ध्वनि–तरंगो को बिजली की तरंगों में बदल देता है। 'डिजिटल ऑडियो सिस्टम' इन एनालॉग सिग्नलों को 'डिजिटल सिग्नलों' में बदल कर रिकार्ड कर लेता है। इसके बाद कम्प्यूटर की मदद से इन सिग्नलों में इच्छित परिवर्तन किए जा सकते हैं और इन्हें जब इच्छा हो तब स्पीकर के माध्यम से ध्वनि के रूप में बदल कर सुना जा सकता है। सुनने की प्रक्रिया में पुनः डिजिटल कन्वर्टर द्वारा डिजिटल ऑडियो फाइल को एनालॉग सिग्नल में बदल कर स्पीकर की मदद से मनचाही ध्वनि और संगीत का आनन्द लिया जा सकता है। कम्प्यूटर के हार्डवेयर में इसी कार्य के लिए साउन्ड कार्ड का प्रयोग किया जाता है।

डिजिटल ऑडियो की तरह डिजिटल वीडियो भी मल्टीमीडिया का एक अन्य प्रमुख तत्व है। इसमें भी एनालॉग वीडियो सिग्नल को कन्वर्टर कार्ड डिजिटल वीडियो सिग्नल में बदल दिया जाता है। इसे 'सैम्पलिंग' कहा जाता है। इसके बाद इस डिजिटल वीडियो को 'हार्ड डिस्क' में संग्रहीत करने के बाद कम्प्यूटर स्क्रीन पर देखा जा सकता है। विभिन्न प्रकार के 'एडिटिंग सॉफ्टवेयर' की मदद से इसे जरूरत के मुताबिक संपादित (एडिट) भी किया जा सकता है और एनालॉग कनवर्टर में डालकर इसका वीडियो भी तैयार किया जा सकता है। इस प्रकार ध्वनि, वीडियो, शब्द, चित्र और एनीमेशन से मल्टीमीडिया का सुनहरा संसार रचा जाता है।

लेकिन इस सुनहरे संसार को दर्शकों तक पहुँचाना भी कोई आसान काम नहीं है। यह क्रिया कई स्तरों से होकर गुजरती है तब कहीं जाकर मल्टीमीडिया प्रोग्राम अपने ग्राहकों के पास पहुँचता है।

सर्वप्रथम प्रोजेक्ट की योजना बनाई जाती है। फिर इसका शुरुआती डिजाइन तैयार किया जाता है जिसमें यह निश्चित किया जाता है कि कौन–कौन से टेक्स्ट, ग्रॉफिक्स, वीडियो और ऑडियो का प्रयोग होगा।

दूसरे चरण 'प्रोडक्शन' में ही मल्टीमीडिया प्रोजेक्ट को यथार्थ शक्ल प्रदान की जाती है और विभिन्न तत्वों को अलग–अलग निर्माण कर ऑथरिंग टूल द्वारा उन्हें उचित रूप से मिला कर और एडिट करके प्रोजेक्ट का निर्माण किया जाता है।

तीसरा चरण होता है मल्टीमीडिया के डिस्ट्रीब्यूशन का। तैयार मल्टीमीडिया को एक पैकेज के रूप में विभिन्न स्टोरेज मीडिया में रखते हैं ताकि इसे जगह–जगह भेजा जा सके। स्टोरेज मीडियम के रूप में मुख्यतः सी. डी. रॉम का उपयोग हो रहा है।

इस प्रकार योजना बनाने से लेकर पैकेज के रूप में प्रस्तुति तक का एक लम्बा किन्तु रोमांचक सफर होता है परन्तु जब आशा के अनुरूप परिणाम मिलता है तो बहुत आनन्द और संतोष प्राप्त होता है।

आजकल मल्टीमीडिया से सम्बन्धित प्रोडक्ट्स भारतीय बाजार में या तो अनुपलब्ध हैं या इनकी कीमतें काफी ऊँची हैं जिसकी वजह से यह आम जनता से अभी पूरी तरह जुड़ नहीं पाया है। परन्तु भविष्य में जैसे–जैसे लोगों की इसके बारे में जानकारी बढ़ेगी और इसकी कीमतें कुछ गिरेंगी तब निश्चय ही मल्टीमीडिया हमारे देश में महत्त्वपूर्ण स्थान बनाएगा।

–साभार
मोतीबाग, फैजाबाद

श्रद्धांजलि

'विज्ञान भूषण', 'बाल साहित्य भूषण', 'विद्या वाचस्पति', 'विज्ञान भास्कर', 'बाल विज्ञान लेखक सम्मान' आदि से सम्मानित वरिष्ठ विज्ञान लेखक श्री श्याम नारायण कपूर का 93 वर्ष की आयु में 18 नवम्बर, 2001 को कानपुर में देहावसान हो गया। आपने लोकोपयोगी विज्ञान पर दो सौ से अधिक लेखों तथा बीस पुस्तकों की रचना की।

विज्ञान परिषद् परिवार की आपको हार्दिक श्रद्धांजलि।

–सम्पादक

कोयला खनन उद्योग में दुर्घटनाएँ

✍ शिवेन्द्र कुमार पांडे

पृथ्वी में लगभग 3000 खनिज पाए जाते हैं, लेकिन इनमें से केवल 100 खनिजों का उपयोग ही मानव करता है। भारत में लगभग 4000 खानों के माध्यम से 52 खनिजों का खनन वर्तमान में किया जा रहा है।

भारत में खनिज खनन कार्य वैदिक काल से ही किए जाने के अनेक ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं। यजुर्वेद में सोना, चाँदी, टिन, ताँबा और लौह खनिजों का विवरण मिलता है। कौटिल्य शास्त्र (लगभग 2400 वर्ष पूर्व) में खनिजों व उनके अयस्कों, मणि–रत्नों, समुद्री खनिजों, प्लेसर भंडारों, आदि के विस्तृत भूवैज्ञानिक विवरण के साथ–साथ उनके खनन के लिए विरित्तृत प्रणालियों और धातुकर्मीय प्रक्रमों की चर्चा विस्तार से की गई है। लेकिन लौह प्रगलन के लिए चारकोल (लकड़ी का कोयला) व कृषि अपशिष्टों का वर्णन इसमें मिलता है – कोयले का नहीं। पर इतना तय है कि उस समय भूवैज्ञानिक खनन व धातुकर्मीय विषयों का ज्ञान भारत में पराकाष्ठा प्राप्त कर चुका था।

भारत में प्राचीन काल की पुरानी खानों के अवशेष बिहार, मध्यप्रदेश, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, गुजरात, जम्मू–कश्मीर, राजस्थान आदि में मिलते हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि उन दिनों खनन कार्य मुख्यतः एक सीमित गहराई के अंतर्गत (10–25 मीटर) ही किया जाता था। लेकिन इसके कुछ अपवाद भी मिलतें हैं– बिहार के सिंहभूमि में ताँबे की खान और राजस्थान के जावर क्षेत्र में लेड–जिंक–चाँदी भण्डार की खान, जहाँ 61.5 मीटर गहराई तक खनन कार्य के प्रमाण मिलते हैं। लेकिन उस काल की खनन दक्षता का सबसे उत्कृष्ट प्रदर्शन कर्नाटक की हट्टी स्वर्ण खान में देखने को मिलता है, जहाँ खनन कार्य के लिए 184.6 मीटर सीधी खड़ी शाफ्ट (एक लिफ्ट समान प्रवेश द्वार) और खनन के लिए कई साफ–सुथरी चिकनी सुरंगे/गुफाएँ अत्यधिक सख्त चट्टानों के भीतर निर्मित हैं। फिर उन दिनों सारा खनन कार्य हस्तचालित साधारण उपकरणों से किया जाता था, क्योंकि यान्त्रिक उपकरणों का आविष्कार नहीं हुआ था। इसलिए खानों में शायद दुर्घटनाएँ भी कम होती थीं। यही कारण है कि प्राचीन काल के भारतीय ग्रंथों में खनन उद्योग से जुड़े सभी विषयों (पहचान लक्षण, खनन प्रणाली, खनिज प्रक्रम, प्रबन्ध व्यवस्था, उपयोग व व्यापार) पर विस्तृत विवरण मिलता है, लेकिन खान सुरक्षा के नियम–कानूनों के संदर्भ में कुछ विशेष विवरण नहीं मिलता है। फिर कोयला खनन कार्य भी उन दिनों नहीं किया जाता था – जिसमें कार्य करते समय दुर्घटनाओं की संभावना सबसे अधिक होती है।

ऐतिहासिक संदर्भ में कोयला खनन कार्य एक नया उद्योग है, जिसका प्रारंभ अठारहवीं सदी की औद्योगिक क्रांति के उद्भव से जुड़ा है। इसके पूर्व तक औद्योगिक ताप ऊर्जा का प्रमुख स्रोत चारकोल था। इस औद्योगिक क्रांति का स्रोत था 'वाष्प' और इसकी प्राप्ति हुई कोयला दहन से। जेम्स वाट ने इसका आविष्कार 1782 में किया था और उसके द्वारा पेटेंट कराया प्रथम वाष्प इंजन का उपयोग कोयला खान में ही किया गया। वाष्प शक्ति के व्यापक उपयोग की संभावनाओं ने नए–नए उद्योगों को जन्म दिया, जिनके अपेक्षाकृत बड़े आकार की मशीनों का उपयोग किया जाने लगा व इनके लिए आवश्यक लोहे की ढ़लाई ने सहसा चारकोल की माँग को बढ़ा दिया। आपूर्ति से अधिक माँग होने के कारण चारकोल के मूल्य में अप्रत्याशित वृद्धि होने लगी और कोयले के उपयोग का मार्ग स्वतः खुल गया, जो इस माँग वृद्धि के पूर्व तक एक खर्चीला विकल्प था। फिर 1814 में स्टीफेंसिन द्वारा वाष्पचालित रेलगाड़ी व 1840 में चार्ल्स पार्सन द्वारा बिजली उत्पादन के लिए वाष्प टर्बाइन के आविष्कारों ने कोयला खनन उद्योग को स्थायित्व प्रदान किया। इसके

पश्चात् से कोयला उद्योग ने पीछे मुड़कर नहीं देखा है और विश्व भर में कोयला उत्पादन प्रति वर्ष बढ़ता ही रहा है।

कोयला खनन कार्य को विश्व भर में सबसे अधिक खतरनाक पेशा समझा जाता है और खनन उद्योग में सबसे अधिक लोग भी कोयला खान दुर्घटनाओं में जान गँवाते हैं। भारत में औसतन 250 लोग प्रति वर्ष खान दुर्घटनाओं में मरते हैं, जिनमें 180 की मृत्यु कोयला खानों में होती है। इसके अलावा भारतीय खानों में 1500 लोगों को गंभीर शारीरिक चोटें प्रति वर्ष सहन करनी पड़ती हैं, जिनमें 1100 लोग कोयला खानों में कार्यरत होते हैं। विश्व के अन्य कोयला उत्पादक देशों में भी कोयला खान दुर्घटनाओं का प्रतिशत कुछ ऐसा ही है।

किसी भी कोयला क्षेत्र में खनन विस्तार की गतिविधि बढ़ने के साथ–साथ दुर्घटनाओं की संभावनाएँ बढ़ने लगती हैं। कोयला क्षेत्रों का प्राकृतिक विस्तार एक सीमाबद्ध दायरे के अंतर्गत होने के कारण वहाँ खनन विस्तार के साथ–साथ सुरक्षा उपायों के भौतिकीय विकल्प बहुत कम हो जाते हैं और खान सुरक्षा के लिए कृत्रिम तकनीकी उपायों का सहारा लेना पड़ता है।

व्यावहारिक रूप में खनन के लिए कौन सी विधि अपनाई जाए (खुली व भूमिगत) का निश्चय सामान्य व्यापारिक (लाभ–हानि) मापदण्डों को ध्यान में रख कर किया जाता है। कोयला खनन में इसका निर्धारण, एक स्थान विशेष में कोयला संस्तरों की मोटाई/ढ़ाल/गहराई के ऊपर निर्भर करता है।

जिस किसी स्थान पर कोयला संस्तर सतह के नजदीक पाए जाते हैं उनके ऊपर आच्छादित चटट्ानों की परत को खोदने का खर्च, उसके नीचे प्राप्त होने वाले कोयले के मूल्य से कम होता है, तब वहाँ खुली खान खोलना लाभदायक होता है। लेकिन खुली खानों की गहराई बढ़ने के साथ–साथ उल्लिखित व्यापारिक गणित में परिवर्तन होता रहता है और इस प्रकार की खानों में एक खास गहराई (जो प्रत्येक कोयला संस्तर के लिए अलग होती है – उसकी मोटाई व ढ़ाल के अनुसार) प्राप्त कर लेने पर, ऊपरी चटट्ानों को निकालने का खर्च उसके नीचे प्राप्त होने वाले कोयले के मूल्य से अधिक होने लगता है। इस स्थिति में पहुँचने पर उस खुली खान को बंद कर दिया जाता है जो अंततः एक तालाब का रूप ले लेती है। इस विधि से 90 प्रतिशत कोयला भण्डारों का खनन संभव होता है, लेकिन यंत्रीकृत खुली खानों में दुर्घटनाएँ भी होती हैं (लेकिन भूमिगत खानों से कम)।

जिन स्थानों पर कोयला संस्तर गहराई पर मिलते हैं, वहाँ भूमिगत खान खोली जाती है। इस विधि में भूसतह से एक जोड़ा तिरछी सुरंग (इन्क्लाइन) या दो सीधे कूपक (4–8 मीटर व्यास) खोद कर गहराई में स्थित कोयला संस्तर तक पहुँच कर उनके मिलन स्थान से कोयला संस्तरों में घुस कर, खनन कार्य के लिए विशेष नाप की कई समानान्तर सुरंगें समकोण दिशा में उस कोयला परत के सम्पूर्ण विस्तार क्षेत्र (खान की प्रशासनिक सीमा) में खोदी जाती हैं, जिनके बीच निर्धारित आकार वाले कोयले के चौकोर खंभे निर्माण कर छोड़ दिए जाते हैं। इस प्रकार खंभो व सुरंगों के निर्माण के साथ उस खान से कोयला उत्पादन प्रारंभ हो जाता है। अंत में, छोड़े गए कोयले के खंभों का भी कुछ कोयला उत्पादन किया जाता है लेकिन खान सुरक्षा की

तालिका–1: कोयला खानों के प्रति 1000 कार्यरत लोगों में दुर्घटना द्वारा मृत्यु–दर प्रतिशत

देश	1986	1987	1988	1989	1990	औसत
ग्रेट ब्रिटेन	0.12	0.09	0.21	0.26	0.17	0.17
जर्मनी	0.26	0.20	0.17	0.21	0.23	0.22
आस्ट्रेलिया	0.40	0.10	0.18	0.18	0.23	0.22
भारत	0.39	0.32	0.32	0.32	0.30	0.33
अमेरिका	0.47	0.37	0.43	0.43	0.41	0.40

दृष्टि से इन खंभों का कुछ भाग खान के भीतर छोड़ना पड़ता है। इस विधि से मात्र 25 प्रतिशत कोयला भंडारों का ही खनन हो पाता है व खुली खान की अपेक्षा यह खर्चीली विधि है। लेकिन झरिया व रानीगंज कोयला क्षेत्रों में जहाँ उच्च कोटि का कोयला (झरिया भारत में कोकिंग कोयले का एकमात्र स्रोत है। जिसके अभाव में कार्यरत इस्पात संयंत्रों को चलाया नहीं जा सकता है) मिलता है, कोयला खनन किए गए स्थानों में बालू भर कर 40 प्रतिशत तक उत्पादन किया जा रहा है। अंततः खनन कार्य बन्द करने पर इन खानों में भी पानी भर जाता है (कुँआ खोदने जैसा कार्य होने के कारण) व कई बार प्राकृतिक रूप में कोयला संस्तरों में समाई विस्फोटक मिथेन गैस व अन्य विषैली गैसें, विशोषण सक्रियता के कारण इन बन्द खानों में भर जाती हैं और कई बार ऐसी बन्द खानों में आग भी लग जाती है क्योंकि छोड़े गए खंभों को स्वच्छ हवा के सम्पर्क में आने पर (भूसतह की दरारों से खनन क्षेत्र का सम्पर्क होने पर) स्वतः दहन (कोयला का विशिष्ट गुण) का खतरा निरंतर बना रहता है और इससे सुरक्षा का सरल उपाय होता है – इन खानों में पानी भरे रखना।

कोयला खनन के लिए अपनाई जाने वाली उल्लिखित खनन विधियों की विवेचना से स्पष्ट हो जाता है कि सभी बन्द खानों की नियमित निगरानी एक महत्वपूर्ण अनिवार्यता है क्योंकि ये बंद खानें, उनके अगल–बगल व नीचे खनन रत खानों के लिए हमेशा खतरे का अप्राकृतिक स्रोत बन चुकी होती हैं। लेकिन कोयला खनन उद्योग की यह विडंबना है कि बन्द की गई खान में सुरक्षा की दृष्टि से पानी भरा रहना जरूरी है, तो दूसरी ओर यही पानी वर्तमान खानों (समीप में बन्द खानो की जानकारी न होने व सर्वे असावधानियों के कारण) से संपर्क होने पर भीषण तबाही मचा देता है।

वैसे भी भूमिगत खानों मे कार्यक्षेत्र का परिदृश्य निरंतर बदलता रहता है और खनन कार्य भी नित नए व ऐसे अनजान क्षेत्रों में करना पड़ता है, जहाँ इसके पूर्व कोई मानव नहीं पहुँचा था। लेकिन एक भूमिगत कोयला खान में व्याप्त खतरनाक पर्यावरण की कल्पना घर बैठे नहीं की जा सकती है, यदि आपने इस पाताल–लोक की यात्रा कभी नहीं की है।

एक भूमिगत खान का सम्पूर्ण परिवेश, सामान्य प्राकृतिक पर्यावरण से सर्वथा भिन्न होता है, जहाँ जीवित रहने के लिए अनिवार्य स्वच्छ हवा की व्यवस्था भी कृत्रिम उपायों द्वारा निर्मित की जाती है। कुछ एक स्थानों पर ही बिजली व्यवस्था के कारण, खान के भीतर चारों ओर अंधकार छाया रहता है और सभी कार्य मध्यम रोशनी में करने पड़ते है। फिर खान में गहराई बढ़ने के साथ–साथ तापमान वृद्धि होती रहती है और आर्द्रता का स्तर भी बदलता रहता है। खनन कार्य में सक्रिय लोगों को छोटे–छोटे समूहों में एकान्त स्थान पर कार्य करना पड़ता है व उनका सम्पर्क खान में कार्यरत अन्य लोगों से नहीं रहता है और कार्यस्थल में कई बार, खड़े होने की कम ऊँचाई का बन्धन भी उन्हें झेलना पड़ता है। खनन कार्य के लिए निर्मित रोडबेज हमेशा सीधी–सपाट न हो कर, अकसर चढ़ाई/ढ़ाल लिए होती है और ऊपरी चट्टानों से पानी लगातार टपकता रहता है, इसलिए उन पर चलने में फिसलने का भय बना रहता है। यांत्रिक मशीनों (पानी निकास पंप, कोयला कटिंग मशीन, संवातन पंखे) के उपयोग से धूल निर्माण व शोर पैदा होता रहता है और इन मशीनों को कार्यरत रखने के लिए इनका रख रखाव व मरम्मत का कार्य भी सीमाबद्ध रोशनी व छोटे स्थानों पर करना पड़ता है। खनन कार्य के दौरान कोयला संस्तरों में दरार व फोड़न पैदा होने पर उसके भीतर अधिशोषित जहरीली व विस्फोटक गैसों का खान के भीतर फैलने और अचानक पानी घुस जाने जैसे अतिक्रमणों का भय बना रहता है। फिर खनन उद्योग में कार्यरत लोगों को पेशेवर–रोगों से ग्रसित होने की संभावना बनी रहती है, जिसका ज्ञान भी कई वर्ष बीत जाने पर ही होता है। इस प्रकार के अप्राकृतिक व विविधता भरे खतरनाक परिवेश में यदि दुर्घटनाएँ होती हैं, तो इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

इसलिए खनन क्षेत्र में सुरक्षा के आयाम बहुत विशाल हैं, जिसकी तुलना किसी अन्य उद्योग से नहीं की जा सकती है, जहाँ दुर्घटनाओं के क्षेत्र पूर्व अनुमानित, स्थापित व सीमित होते हैं, और उनके रोकथाम की व्यवस्था व्यवहारिक रूप में पूर्व–निर्धारित कर कार्यान्वित करना संभव है। एक फैक्टरी के विपरीत, भूमिगत खानो का परिदृश्य निरंतर बदलता रहता है और कई बार तो

इतनी शीघ्रता से व अचानक ऐसा परिवर्तन होता है कि दुर्घटनाओं का टाला नहीं जा सकता है।

साधारणतः यह समझा जाता है कि भूमिगत कोयला खानों में समाए अनेक प्रकार के खतरों का भय, खुली कोयला खानों में नही होता है। लेकिन खुली खानों में भी दुर्घटनाएँ होती है, केवल एकल दुर्घटनाओं में मृत्यु दर कम होती है और इन्हें राह चलते होने वाली दुर्घटनाओं के समकक्ष माना जा सकता है। इसके विपरीत भूमिगत कोयला खानों में गैस विस्फोट व अचानक पानी घुस जाने के कारण खान के भीतर उपस्थित अधिकतर लोग उसकी चपेट में आ जाते हैं।

विश्व भर में (भारत भी शामिल) खान सुरक्षा नियम–कानून का निर्माण वहाँ या अन्य देशों में घटित खान दुर्घटनाओं की जाँच–पड़ताल के निष्कर्षों के आधार पर किया गया है व यह क्रिया वर्तमान में (दुर्घटना होने पर) भी जारी है। लेकिन इनके निर्माण का प्रमुख सूत्रधार कोयला खान दुर्घटनाएँ हैं– क्योंकि सबसे अधिक खनन कार्य कोयला उद्योग करता है।

कोयला उत्पादन में भारत का स्थान चीन व अमेरिका के पश्चात तीसरा स्थान है। यद्यपि भारत में कोयला खनन कार्य बहुत पहले ही आंरभ हो चुका था – रानीगंज (1774), डाल्टनगंज (1779), गिरीडिह (1850), मोहपानी (1862), वरोरा (1871), उमरिया (1882), सिंगरैनी (1886) और झरिया (1980) – लेकिन "प्रथम भारतीय खान सुरक्षा कानून" का प्रावधान 22 मार्च 1901 से ही बना है, जिसमें अनुभव वृद्धि के साथ संशोधन व विस्तार किया जाता रहा है। इसलिए भारत में प्रभावी, वर्तमान खनन कानून (तकनीकी प्रणाली व सुरक्षा नियम) को संकल्पना व विस्तार की दृष्टि से यथेष्ट माना जा सकता है। आवश्यकता है केवल, खनन कार्य के दौरान जागरूक रह कर, सावधानी के साथ इन सब नियमों का पालन करते रहना।

ऐसा करने पर दुर्घटनाएँ कम होंगी, लेकिन खनन कार्य को दुर्घटनाविहीन बनाना संभव नहीं है। इसके पीछे प्रमुख कारण है – मानव मनोवृत्ति में प्राकृतिक रूप से अंगीभूत "सर्वत्र विजय प्राप्त करने का मानव मनोवैज्ञानिक विश्वास"।

विश्व भर में घटित खान दुर्घटनाओं की जाँच–पडताल से एक तथ्य स्पष्टतः उभर कर सामने आता है कि वर्तमान में पारित सुरक्षा नियमों का पालन करते रहने पर 98 प्रतिशत दुर्घटनाओं को टाला जा सकता था। केवल 2 प्रतिशत दुर्घटनाएँ अप्रत्याशित कारणों से घटती हैं, जिनके ऊपर मानव का कोई नियंत्रण नहीं है।

अर्थात, मानव भले ही आज, सर्वविजेता होने का दम्भ पाल बैठा है, लेकिन वह आज भी प्रकृति के हाथों की कठपुतली मात्र है। इसलिए दुर्घटनाओं के भय से, कोयला खानों को बन्द करना उसका समाधान नहीं है क्योंकि खनन कार्य में दुर्घटना होना तो एक नियति है।

अतः हमें, जो कुछ जैसा है, वैसा ही स्वीकारना होगा –

"सुनहुँ भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनि नाथ।
हानि लाभ, जीवन मरण, यश अपयश विधि हाथ।।

**छवि निकुंज, बांस बंगलो कम्पाउन्ड,
चौथी क्रासिंग, रांची रोड,
पुरूलिया (प. बगांल)**

डॉ. मुरली मनोहर जोशी का सारस्वत सम्मान

भारत दर्शन शोध संस्थान प्रयाग द्वारा 23 दिसंबर, 2001 को भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्री डॉ. मुरली मनोहर जोशी का सारस्वत सम्मान किया गया। यह सम्मान डॉ. जोशी को रूसी विज्ञान अकादमी का मानद सदस्य चुने जाने के उपलक्ष्य में प्रदान किया गया। इस अवसर पर उत्तर प्रदेश के राज्यपाल डॉ. विष्णुकांत शास्त्री ने डॉ. जोशी के सम्मान में प्रकाशित 3 पुस्तकों का लोकार्पण किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता पद्म भूषण डॉ. विद्या निवास मिश्र जी ने की।

विज्ञान दर्शन एवं अध्यात्म

✍ डॉ. शिवगोपाल मिश्र

विज्ञान और धर्म को लेकर काफी लिखा जा चुका है और इस निष्कर्ष पर पहुँचाया गया है कि विज्ञान तथा धर्म में कोई वैमनस्य नहीं है। ये एक दूसरे के पूरक हैं या हो सकते हैं। हमारे अनेक वैज्ञानिकों की आस्था धर्म में रही है। वे धर्म को नकारते नहीं, भले ही वे धर्म में व्याप्त कट्टरता के पोषक न हों। किन्तु विज्ञान, दर्शन और अध्यात्म परस्पर अनुस्यूत विषय लगते हैं – या यों कहें कि वे आरोही क्रम प्रदर्शित करते हैं। न जाने कितने वैज्ञानिक जन दर्शन एवं अध्यात्म को समेटे हुए मिलते हैं। अतः विज्ञान, दर्शन एवं अध्यात्म का कुछ विस्तृत विवेचन आवश्यक प्रतीत होता है। मैं यहाँ कुछ कही गई या अनुभव की जाने वाली बातों के ही आधार पर ही वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इनकी विवेचना कर रहा हूँ।

विज्ञान प्रकृति के भौतिक पक्षों का अध्ययन है। इस अध्ययन में मन (mind) की विशेष भूमिका है। जैसा कि सर्वविदित है मन का अधिष्ठान मस्तिष्क (brain) है और मस्तिष्क मनुष्य जाति (homosapien) की सबसे बड़ी उपलब्धि है। मस्तिष्क की जटिल संरचना में ही निहित है मनुष्य का मन जिसमें सोचने विचारने की शक्ति पाई जाती है। इस तरह मनुष्य में मस्तिष्क नहीं अपितु मन प्रधान है। मनुष्य के लिए केवल मस्तिष्क से शून्य या अनन्त की कल्पना कर पाना कभी भी सम्भव नहीं था।

मन की प्रकृति चंचल है। गीता में अर्जुन श्री कृष्ण से कहते हैं चंचलं हि मनः कृष्ण! इस पर श्री कृष्ण तुरन्त प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं– अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते यानी अभ्यास एवं वैराग्य के द्वारा मन को पकड़ में रखा जा सकता है। वस्तुतः कृष्ण योगाभ्यास की और भक्ति की बात करते हैं।

जैसा की ऊपर कहा गया है मन (बुद्धि) के द्वारा ही विज्ञान के क्षेत्र में नाना प्रकार के आविष्कार हुये हैं। ये आविष्कार आज प्रौद्योगिकी के नाम से जाने जाते हैं। आज प्रौद्योगिकी वह माध्यम बन चुकी है जिससे विज्ञान को उपयोगी बनाया जा सकता है – उपयोगी वस्तुओं का निर्माण किया जा सकता है। इस तरह विज्ञान और प्रौद्योगिकी (S and T) प्रकृति के भौतिक पक्षों का अध्ययन करके उसका उपयोग करते हैं। किन्तु मन, जिसने विज्ञान और प्रौद्योगिकी का सम्भव बनाया, वह इनसे भी आगे बढ़कर जब अपने विषय में या कि लोककल्याण के विषय में, प्रकृति और मनुष्य के अन्तःसम्बन्ध के विषय में सोचता है तो दर्शन का जन्म होता है। स्पष्टतः यह हमारे तथाकथित ज्ञान–विज्ञान की उच्चतर स्थिति है। यह आरोही क्रम का द्वितीय सोपान है। दर्शन भारतीय ऋषि मुनियों का प्रिय विषय रहा है। विश्व की अनेक प्राचीन सभ्यताओं में उच्चकोटिक दर्शन का प्रचार रहा है। अतः भारत को ही उसकी जन्मभूमि कहा कहा जाना चाहिए।

वस्तुतः दर्शन हमें जीवन तथा नैतिकताओं, मूलभूत सत्यों एवं सिद्धान्तों को समझने के लिए प्रेरित करता है ऐसी ही समझ के फलस्वरूप मनुष्य जाति में पाये जाने वाले दो गुणों – आत्मकेन्द्रत्व (स्वार्थ) तथा लोभ का स्पष्टीकरण होता है। इन्हीं दो गुणों से मनुष्य दुख तथा विनाश को प्राप्त होता है।

भारतीय संस्कृति की यह अद्वितीय विशेषता रही है कि वह इन दोनों गुणों पर विजय पाने के लिए आत्मानुशासन अथवा संयम का उपदेश देती आई है। चाहे अपौरुषेय वेद हों या बुद्ध, महावीर जैसे महापुरुष, सबों ने एक स्तर से यही संदेश दिया है कि आत्मसंयम, अहिंसा तथा अपरिग्रह को अपनाया जाय तो मनःशान्ति उपलब्ध हो सकती है। ये ऐसे गुण हैं जो बिना किसी जोर जबरदस्ती के विश्व भर में प्रसरित होते रहे हैं।

आधुनिक युग में पाश्चात्य विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने नाना प्रकार के लुभावने पदार्थों को हम पर जिस तरह से थोपा है उससे लोभ प्रवृत्ति को बल मिला है। उसने नये नये विध्वंसक हथियार तैयार करके सैन्य हिंसा को प्रबल बना दिया है। इन सबों के अत्यन्त घातक परिणाम हो रहें हैं। ऐसा नहीं था कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी प्राचीन काल में नहीं थे। सभी सभ्यताओं में इनका न्यूनाधिक अस्तित्व रहा है किन्तु वे समाज के पोषक के रूप में थे, उनसे समाज का हित होता था। किन्तु आज ऐसा नहीं रह गया। इससे हमारी पीढ़ियों पुरानी सांस्कृतिक एवं सामाजिक मान्यताओं का क्षरण हुआ है।

इसका कारण ढूंढना आसान है। चूँकि पाश्चात्य विज्ञान का उदय एवं विकास सर्वथा भिन्न तरीके से हुआ है फलतः न केवल विज्ञान को अपितु मानवीय प्रगति एवं स्वयं प्रकृति को पूर्णरूपेण समझने में व्यवधान आया है। विगत 300 वर्षों में यूरोपीय देशों ने सम्पूर्ण पृथ्वी के प्राकृतिक साधनों के अनियन्त्रित दोहन करने के साथ ही अदम्य लोभ को जन्म दिया है। हमारे उपनिषदों का कथन है कि ईश्वर ने सबों के भरण के लिए पर्याप्त सामग्री दे रखी है किन्तु लोभ के वशीभूत कुछ लोग उसे हथिया लेना चाहते हैं। आज का विज्ञान और आज की प्रौद्योगिकी लोभ की एकाकी संस्कृति को वैश्विक रूप देना चाहते हैं। वे विकासशील देशों का विकास के नाम पर धन देकर बाध्य कर रहे हैं कि इसी संस्कृति को अपनाना हितकर है। क्या नई नई सामग्री का उत्पादन एवं उसका निर्यात्, यही "विकास" है? ऐसा लोभ–आश्रित विकास मानव के लिए घातक बन रहा है। इसने समाज की रीढ कहे जाने वाले शिक्षकों, उपदेशकों एवं चिकित्सकों के वर्ग को दूषित कर दिया है। यदि हमारे वैज्ञानिक भी इस लोभ की चपेट में आ जावें तो कोई आश्चर्य नहीं होगा। आज अनेक निर्धन देश जो अपना अधिकांश धन भोज्य सामग्री में खर्च करते थे, वे अब नवीन चिकित्सा सुविधाओं को प्राप्त करने में खर्च कर रहे हैं। अभी तक मलेरिया, टी.बी. आदि का उपचार सस्ता था तो जनता कम त्रस्त थी किन्तु अब कैंसर, हृदयाघात, अस्थिरोग जैसे नये एवं भयावह रोगों के प्रकट होने से तथा इनका उपचार अत्यधिक महँगा होने से डाक्टरों की जेबें भर रही हैं और गरीब लुट रहे हैं। आयुर्वेद, यूनानी तथा योग जैसी परम्परागत चिकित्सा विधियों को अवैज्ञानिक घोषित करके अंग्रेजी के एलोपैथी का वर्चस्व स्थापित किया गया है। स्पष्ट है कि भारत को अपनी प्राचीन चिकित्सा प्रणाली को फिर से अपनाना होगा। उसके पास आयुर्वेदिक औषिधियों के निर्माण के लिए ओषधीय पादपों का वृहद भण्डार है। तो फिर वह विश्व स्वास्थ्य संगठन के निर्देशों पर क्यों चले? क्या चीन, क्यूबा या निकारागुवा उसके निर्देश पर चल रहें हैं?

चूँकि हमारी अधिकांश जनता अभी भी चिकित्सीय सुविधा से वंचित है, जबकि स्वास्थ्य पर कुल राष्ट्रीय आय (GDP) का 3.6% से भी अधिक खर्च किया जा रहा हैं। चूँकि हमारे देश ने विगत 50 वर्षों में पाश्चात्य मॉडल का अनुसरण किया है, इसीलिए ऐसी दयनीय स्थिति आ गई है। यदि ग्राम स्तर पर चिकित्सा

इलाहाबाद में इन्डो-रशियन सेन्टर फार बायोटेक्नोलाजी का उद्घाटन

इलाहाबाद स्थित भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान के प्रांगण में 23 दिसंबर, 2001 को भारत सरकार के मानव संसाधन विकास, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तथा महासागर विकास मंत्री डॉ. मुरली मनोहर जोशी ने इंडो-रशियन सेन्टर फार बायोटेक्नोलाजी (भारत-रूस जैव प्रौद्योगिकी केन्द्र) का उद्घाटन करते हुए इसे भारत तथा रूस के बीच वैज्ञानिक एवं तकनीकी सहयोग का एक और उदाहरण बताया जिससे शोध एवं अनुसंधान को एक नई दिशा मिलेगी।

इस अवसर पर भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय के सचिव डॉ. वी.एस. राममूर्ति तथा जैव प्रौद्योगिकी विभाग की सचिव डॉ. मंजु शर्मा भी उपस्थित थीं।

या उद्योग की परम्परागत देशी विधियों में निरन्तर सुधार किया गया होता तो देश का कुछ दूसरा ही परिदृश्य होता। इसका अर्थ यह नहीं है कि हम ज्ञान तथा सूचना की खिडकियाँ बन्द कर लें। हमें अपने द्वारों से अपनी प्रतिभा का पलायन नहीं होने देना है। नवयुवकों में स्वाभिमान जागृत किया जाना है और अपनी प्राचीन कृषि पद्वतियों को अपने हाथ से खोने नहीं देना है।

अध्यात्म का क्षेत्र मन तथा दर्शन से परे है। इससे जीवन तथा सम्पूर्ण सृष्टि के विषय में अनुभूति प्राप्त होती है। अध्यात्म हमें सिखाता है कि हम उस परम शक्ति के समक्ष नतमस्तक हों जिससे इस ब्रह्माण्ड की रचना हुई। इस सृष्टि एवं सृजन में मनुष्य की उत्पत्ति एक नगण्य घटना मात्र है। विज्ञान द्वारा परमाणु तथा डी.एन.ए. की खोज से यह सिद्ध हो रहा है कि हमारे चारों ओर प्रकृति में अद्‌भुत एवं प्रबल शक्तियाँ विद्यमान हैं। फलतः विज्ञान एक अदना साधन है जिसने मानव को दूरबीन तथा सूक्ष्मदर्शी जैसे यन्त्र प्रदान कर प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण करने की शक्ति प्रदान की है। इस तरह प्रकृति तथा प्रकृति में विद्यमान दैवी एकरसता को समझने में सहायता मिली है। अतः आवश्यकता है कि विज्ञान को शहरों, पुस्तकों तथा प्रयोगशालाओं या विश्वविद्यालयों तक ही सीमित न रख कर गाँव के हर बालक तथा बालिका को अवसर प्रदान किया जाय। कोई कारण नहीं कि यह विज्ञानवेत्ता न बन सकें। 1942 में रायल सोसाइटी ने कैम्ब्रिज के एक जैव रसायनेत्ता जोसेफ नीढम को चीन की वैज्ञानिक परमपरा एवं सभ्यता का अध्ययन करने भेजा तो नीढम आर्श्चयचकित रह गये विज्ञान के क्षेत्र में प्राचीन काल में चीन में हुई प्रगति का अन्वेषण करके। उनका कहना है कि वस्तुतः कागज और मुद्रण, बारूद तथा कुतुबनुमा– ये तीन आविष्कार जिनके बल पर यूराप ने इतनी प्रगति की ये वस्तुतः हजारों वर्ष पूर्व चीन में खोजे जा चुके थे। यह तो यूरोपीय विज्ञानियों की हठ्धर्मिता एवं अनभिज्ञता थी कि वे चीन के प्राचीन तथा मध्ययुग के वैज्ञानिक योगदान की उपेक्षा करते रहे। उसने यह भी कहा कि जब भारत और श्रीलंका की प्राचीन वैज्ञानिक परम्परा का सही सही मूल्यांकन होगा तो स्पष्ट हो सकेगा कि ये देश भी काफी विकसित थे। चीनी, भारतीय या इस्लामी विज्ञान की विशेषता रही है कि उसने विज्ञान को नीतिशास्त्र एवं आचरण से विलग नहीं होने दिया जबकि पाश्चात्य वैज्ञानिक क्रान्ति ने नीतिशास्त्र को विज्ञान के क्षेत्र से अलग रखकर देखा परखा।

आज आवश्यकता है कि तथाकथित विकसित राष्ट्र विकासशील देशों के योगदान को समझें और यह स्वीकार करें कि आज की प्रौद्योगिकी पूर्व तथा पश्चिम दोनों के कारण प्रतिफलित हो पाई है। किसी एक राष्ट्र का एकाधिकार नहीं है। विज्ञान, दर्शन तथा अध्यात्म की त्रिवेणी मानव जाति के लिये कल्याणप्रद हो सकती है।

प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग–211 002

विशिष्ट अतिथियों का विज्ञान परिषद् में आगमन

भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के सचिव डॉ. वी.एस. राममूर्ति ने 23 दिसंबर, 2001 को इलाहाबाद के अपने व्यस्त कार्यक्रम में से कुछ क्षण निकाल कर विज्ञान परिषद् प्रयाग भवन का भ्रमण किया। जैव प्रौद्योगिकी विभाग की सचिव एवं विज्ञान परिषद् की सभापति डॉ. मंजु शर्मा तथा प्रधानमंत्री डॉ. शिवगोपाल मिश्र ने डॉ. राममूर्ति का स्वागत किया एवं परिषद् की गतिविधियों एवं परियोजनाओं के बारे में उन्हें जानकारी दी। इस अवसर पर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के सलाहकार डॉ. वाई.पी. कुमार, डॉ. आर.के, गुप्ता, भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान के निदेशक डॉ. एम.डी. तिवारी, डॉ. ए.के. गुप्ता, डॉ. जी.एल. तिवारी, देवव्रत द्विवेदी एवं प्रमोद कुमार मिश्र उपस्थित थे।

विज्ञान और कृषि पत्रकारिता कुछ खट्टे-मीठे अनुभव

डा. रमेश दत्त शर्मा

पत्रकारिता के बीज बचपन में ही पड़ गए थे, क्योंकि मेरा बचपन जिस घर और गली में गुजरा उसके अंदर ही बनारसी प्रेस था, जहाँ से 'वीर भारत' नाम से एक साप्ताहिक पत्र छपता था। इस प्रेस के बाहर काफी बड़े चबूतरे पर हम बच्चों की चौकड़ी गेंदतड़ी से लुकाछुपी तक सारे खेल खेलती थी। गली का नाम था बनारसी कुंज। उस छोटे-से कस्बे जलेसर (जिला एटा, उत्तर प्रदेश) के अधिकतर बुद्धिजीवी उसी गली में रहते थे। चेयरमैन, सुपरिटेंडेंट, इंटरकालेज के प्रिंसिपल, वाइस प्रिंसिपल, 'वीर भारत' के एडीटर, प्रेस के मैनेजर और मेरे पिताजी-पं. रविदत्त शास्त्री जो स्वयं संस्कृत तथा हिंदी साहित्य के अच्छे विद्वान थे। महीने-पन्द्रह दिन में एक बार गोष्ठी होती थी। इसमें पिताजी मुझे भी ले जाते थे। कस्बा छोटा जरूर था, लेकिन तीज-त्योहार पर मेलों के साथ-साथ कवि-सम्मेलन और मुशायरों की परम्परा थी। समस्या-पूर्तियाँ की जाती थी। प्रायः मेरे पिता जी कवि-सम्मेलनों की अध्यक्षता करते थे और मैं उनके साथ होता था। इन कवि-सम्मेलनों में हाथरस के सुप्रसिद्ध हास्य-व्यंग्यकार काका हाथरसी और निर्भय हाथरसी प्रायः आते थे और समस्या-पूर्ति के साथ-साथ अपनी अन्य रचनाएँ सुनाकर श्रोताओं को आनंद विभोर कर देते थे। एक बार समस्या थी जलेसर जा रहा है। और इसकी पूर्ति एक कवि ने इस प्रकार की थी – आज ले सर जा रहा है। यह वीर रस की कविता थी। इनाम में पीतल के लोटा, गिलास, थाली, परात दिए जाते थे, क्योंकि जलेसर इन बर्तनों के लिए मशहूर था।

मेरा लेखन भी कविताई से शुरू हुआ। अब से 55-56 साल पहले बचपन के अन्य साथियों की तरह मैं भी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शाखा में जाया करता था। शहर का शायद ही कोई हिंदू बालक या युवक होगा जो स्वयंसेवक न रहा हो। देशभक्ति और राष्ट्रप्रेम के साथ ही हिन्दी भाषा की बुनियाद वहीं पड़ी जो एम. एस.सी. तक चली। पिता जी भाँप गए थे कि यह हाथ से निकल जाएगा, इसलिए उन्होनें 'तेरी दादी पीछे पड़ी हैं', इस बहाने से एम.एस.सी. प्रीवियस में ही मुझे खूंटे से बांध दिया।

वीर रस की कविताएँ छठी-सातवीं से ही लिखनी शुरू कर दीं। स्वंतत्रता-दिवस पर इन कविताओं को सुनाकर मैं चांदी के काफी पदक और ट्राफियां जीत लाता था। ये कविताएं 'वीर भारत' में छपने लगीं। राष्ट्रीय स्तर पर पहली रचना 'नवभारत टाइम्स' के बाल-पृष्ठों पर छपी और प्रौढ़-रचना 'सरिता' में। शीर्षक था 'गागारिन के नाम पाती'। इसमें तथाकथित भगवान रूसी अंतरिक्ष यात्री गागारिन से निवेदन करते हैं कि हे गागारिन अगली बार जब अंतरिक्ष में जाओ तो मुझे हरिद्वार में 'हरि की पौढ़ी' पर उतार देना। लोग समझेंगे कि जिन कल्कि भगवान का अवतार होना था, वे यही हैं। इस तरह से पूजने लगेंगे और जो चढ़ावा उसमें से आधा गागारिन तुम्हें दिया जाएगा।

दिल्ली में आया तो मंचों पर कविता सुनाने लगा। दिल्ली हिन्दी साहित्य सम्मेलन की कवि-गोष्ठियों और कवि-सम्मेलनों में कविवर बच्चन जी से भेंट हुई। एक बार मेरे निमंत्रण पर वे राणा प्रताप बाग के पार्क में शरद-पूर्णिमा पर आयोजित कवि गोष्ठी में पधारे और जब पता लगा कि मैं तो विज्ञान का विद्यार्थी रहा हूँ और वैज्ञानिक शब्दावली आयोग में वनस्पति विज्ञान की शब्दावली बना रहा हूँ तो उन्होनें मुझे कहा कि 'हिन्दी में कवि तो बहुत हैं, विज्ञान लेखक इने-गिने हैं और विज्ञान साहित्य का बड़ा अभाव है। तुम विज्ञान पर लिखो।' बस तभी से मंच पर कविता पढ़ने और कवि बनने का सपना छोड़ दिया। कविता फिर भी नहीं छूटी। क्योंकि कविता लिखी नहीं जाती। वह तो फूटती हैं। दो-ढ़ाई सौ कविताएँ-गजल-लिखी होंगीं। एक बार तीसरे सप्तक के कवि श्याम मोहन श्रीवास्तव और डा रामकिशोर द्विवेदी (मेडीकल डाक्टर और जाने-माने कवि तथा साहित्यकार) के साथ संयुक्त कविता-संग्रह छापने की योजना बनी। श्याम मोहन को हम दोनों ने अपनी कविताएँ सौंप दी थीं। लेकिन उनके आकस्मिक निधन के बाद

फिर वैसा प्रयास नहीं किया।

पहली वैज्ञानिक रचना 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में छपी थी 'अफवाहों के शिकार ये वैज्ञानिक'। फिर 6 जून 1963 के धर्मयुग में डी एन ए की दुहरी कुंडली की खोज के नोबल पुरस्कार विजेता डा. फ्रांसिस क्रिक, जेम्स वाटसन और विल्किंस की खोज का विवरण 'क्या विज्ञान ने आत्मा को खोज लिया है' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। डा. धर्मवीर भारती को बहुत अच्छी लगी यह रचना और वे पत्र तथा तार भेजकर मुझ से वैज्ञानिक रचनाएँ लिखवाने लगे। इसी तरह 'नवनीत' के संपादक श्री नारायण दत्त जी तो रचनाओं के लिए सामग्री भेजकर और लेखन में तमाम तरह के सुधार करके बाकायदा लिखना सिखाते रहे। मुझे भी पता नहीं चला कि कब नारायण दत्त जी मेरे बड़े भाई बन गए। कुछ मित्रों ने उड़ा भी दिया कि नारायण दत्त और रमेशदत्त रिश्तेदार हैं। ऐसी ही प्रेरणा देने वाले संपादकों में 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के तत्कालीन संपादक मनोहर श्याम जोशी ने पहली बार वैज्ञानिक विषयों पर धारावाहिक निबंधमालाएं प्रकाशित कीं। मेडीकल फिजियोलोजी पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन के मौके पर उन्होंने तेरह लेखों की श्रृंखला में लेख माला छापी थी। यह मैंने ऑल इंडिया मेडीकल इंस्टीट्यूट के डा. रमेश बिजलानी के साथ लिखी थी। वे आजकल फिजियोलोजी के प्रोफेसर तथा अध्यक्ष हैं और उनकी कई किताबें 'नेशनल बुक ट्रस्ट' से छप चुकी हैं।

'धर्मयुग' में फोटोग्रेव्योर प्रणाली से रंगीन छपाई शुरू हुई तो रंगीन पारदर्शियों की जरूरत पड़ती थी। उन दिनों भारत में रंगीन फोटोग्राफी बहुत प्रचलित नहीं थी। मैंने दिल्ली विश्वविद्यालय के वनस्पति विभाग में प्रो. पी. महेश्वरी, उनके पुत्र प्रो. सतीश महेश्वरी, प्रो. बी.एम. जौहरी, प्रो. एच.वाई. मोहन राम, प्रो. कपिल, प्रो. कोणार, प्रो. श्रीश गुप्ता, प्रो. चोपड़ा इन सबकी विदेश–यात्राओं के बारे में भेंटवार्ताएँ भेजकर रंगीन पारदर्शियों के साथ वनस्पतिविज्ञान की विविध शाखाओं पर लेख लिखे, जो बड़े लोकप्रिय हुए। एक बार पुणे में वैज्ञानिक शब्दावली की वार्षिक संगोष्ठी में राजस्थान विश्वविद्यालय के तत्कालीन वनस्पति विभाग की पत्नी मुझे ढूँढ़ती आई। वे सोचती थीं कि कोई बुजुर्ग होंगे। मुझे देखा तो उनसे उम्र में काफी छोटा था फिर भी चरण–स्पर्श के लिए झुक गई और मुझे बड़ा संकोच हुआ।

प्रोफेसर पंचानन महेश्वरी से पहचान हुई मेरे बैडमिंटन खेलने के और इतिहास–प्रेम के कारण। राणा प्रताप बाग में बैडमिंटन–क्लब था। मैं कालेज में चैंपियन था। खेलने लगा। वहाँ डा. सहदेव सिंह भी खेलते थे। उनसे यों ही वनस्पतिविज्ञान के इतिहास पर चर्चा हुई। उन्होंने मुझे प्रो. महेश्वरी और डा. कपिल का संयुक्त रूप से लिखा निबंध 'ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ़ बॉटनी इन इंडिया' ला दिया। मैंने उसका हिंदी रूपांतर कर दिया। वह कलकत्ता के 'सचित्र आयुर्वेद' में धारावाहिक छपा, चार अंकों में। उसमें वनस्पति वैज्ञानिकों के जो चित्र छपे थे उनके ब्लॉक प्रो. महेश्वरी ने मुझे सहर्ष दे दिए थे। एक बार वे मेरे साथ फोटो खिंचवाने के लिए तैयार हो गए। लेकिन मेरी लेट–लतीफी दगा दे गई। मैं देर से पहुँचा और मौका चूक गया। उनकी साठवीं वर्षगांठ पर मैंने एक रचना लिखी थी उनके जीवन और कार्य के बारे में, जिसे नारायण दत्त जी ने 'वनस्पतिज्ञों के बृहस्पति' शीर्षक से छापा था। वह अंक महेश्वरी जी हमेशा अपनी मेज पर रखे रहते थे।

सी एस आई आर के महानिदेशक बनकर डा. आत्माराम जी जब दिल्ली आए तो मैं दंग रह गया कि इतना बड़ा वैज्ञानिक और खादी और गाँधी टोपी में। उनसे बात करके दैनिक हिन्दुस्तान में छोटा–सा फीचर लिखा था। फिर तो उनसे इतनी घनिष्ठता हो गई कि वे मुझे अपने परिवार को सदस्य मानते रहे। प्रसिद्ध पत्रकार और साहित्यकार श्री दुर्गाप्रसाद नौटियाल मेरे आग्रह पर उनकी जीवनी के लिए उनके इंटरव्यू लेते रहे और काफी सामग्री मैंने छाँटी और उन्हें सौंपी। हिन्दी में किसी और वैज्ञानिक की ऐसी जीवनी नहीं छपी। आत्माराम जी के सत्संग से ही मुझे डा. सत्यप्रकाश जी का और डा. शिवगोपाल मिश्र जी का सान्निध्य प्राप्त हुआ। विज्ञान परिषद ने अपना 'सभ्य' बना लिया। यह नाम स्वामी सत्य प्रकाश जी ने रखा था– जो सभा का सदस्य वह 'सभ्य'। दिल्ली हिन्दी साहित्य सम्मेलन में डा. आत्माराम जी को प्रेरणा से ही वार्षिक 'विज्ञान सम्मेलन' करना और विज्ञान लेखकों का अभिनंदन करना शुरू किया।

डा. डी.एस. कोठारी जब भारत के प्रधानमंत्री के वैज्ञानिक सलाहकार थे तो वे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष तथा वैज्ञानिक शब्दावली आयोग के भी अध्यक्ष हुआ करते थे। उनसे अनेक बार आकाशवाणी के लिए भेंटवार्ताएँ लीं। दिल्ली हिंदी साहित्य सम्मेलन ने

मेरे मित्र 'नंदन' के संपादक श्री जय प्रकाश भारती के प्रयासों से 'वैज्ञानिकी' नाम से मासिक वैज्ञानिक गोष्ठी शुरू की। कई गोष्ठियों में डा. कोठारी जी और डा. आत्माराम जी साथ–साथ आएं। एक बार हम 'वैज्ञानिकी' की ओर से नैनीताल के प्राइमरी स्कूल टीचर चन्द्रशेखर लोहूमी का भाषण 'इंडियन नेशनल साइंस एकेडमी' (इन्सा) में कराना चाहते थे, तो 'इन्सा' के तत्कालीन अध्यक्ष डा. बी.पी. पाल ने इजाजत नहीं दी। शायद वे यह नहीं भूले कि मैने साप्ताहिक हिन्दुस्तान में वैज्ञानिकों के जीवन पर बाल–स्तंभ में छपी लेखमाला में डा. पाल को ईसाई बता दिया था। बाद में उन्होंने मुझे बताया कि वे बर्मा में पैदा हुए थे और पिताजी ने डा. बेंजामिन पियरे पाल नाम रख दिया था। असल में पंजाब के ब्राह्मण–परिवार में जन्में थे और गाँव में मंदिर भी बनवाया था और गाँव के प्रतिभाशाली बालकों का वजीफा भी बाँधा हुआ था।

डा. बी.पी. पाल के शिष्य डा. एम.एस. स्वामिनाथन् जब पूसा इंस्टीट्यूट में बॉटनी डिवीजन के अध्यक्ष थे, तो कभी–कभी पत्रकारों को बुलाकर वहाँ चल रहा काम दिखाया करते थे। इधर दिल्ली के विज्ञान–लेखकों और विज्ञान–पत्रकारों ने मिलकर 'साइंस राइटर्स एसोसिएशन ऑफ इंडिया' (SWAI) बना ली थी। इसकी बैठकों में साठादिक के सभी शीर्षस्थ वैज्ञानिक भाषण देने आ चुके थे। डा. स्वामिनाथन् भी। जब उन्हें आनुवंशिकी के जनक ग्रेगर मेण्डल की खोज की शताब्दी पर स्वर्णपदक से सम्मानित किया गया और मेंडल के गाँव में आयोजित समारोह में बुलाया गया, तो मैंने उनसे चर्चा करके 'धर्मयुग' में एक लेख लिखा था– 'डा. स्वामिनाथन् मेंडल के गाँव में।' उसके बाद गेहूँ की किस्म 'शर्बती सोनारा' पर 'गेहूँ रंग बदलेगा' शीर्षक से मेरी रचना 'धर्मयुग' में छपी जो चन्द्रकिरण सोनरिक्सा की कहानी के उद्धरण से शुरू होती है। इसमें एक रिक्शेवाले की पत्नी उस पर बिगड़ती है कि 'मुंजे से लाल रंग वाले गेहूँ' की रोटी उसे जरा–भी नहीं सुहाती। डा. स्वामिनाथन् ने इस मैक्सिकी गेहूँ सोनारा–64 के लाल दानों पर गामा–विकिरण की बौछार से उत्परिवर्तन किए थे। उन के शिष्य डा. वर्गीज से मैंने गेहूं के खेत में जाकर उससे भेंटवार्ता ली थी। वह हर कतार में जाकर गेहूँ की बाली को हथेलियों में दबाकर रगड़ता और दाना देखता कि किस रंग का है। जितने दाने शर्बती रंग के मिले वे छाँट लिए और फिर आगे उगाए। इस तरह 'शर्बती सोनारा' निकली। अपने साथियों की इस भूल का बड़ा कडुआ मोल डा. एम.एस. स्वामिनाथन् को चुकाना पड़ा। सारे अखबार उनके पीछे पड़ गए। लेकिन जिस धैर्य से उन्होंने इस संकट को सहा, उसी ने स्वामिनाथन् को इतना ऊँचा उठा दिया कि आज वे विश्व में सबसे अधिक समादृत कृषि वैज्ञानिक हैं। उन्हीं दिनों मुझे टाइम्स ऑफ इंडिया ने सहायक संपादक के इंटरव्यू में बुलाया था और करीब ढाई घंटे तक 'शर्बती सोनोरा' की चर्चा होती रही। असल में टाइम्स ऑफ इंडिया के एक पत्रकार के रिश्तेदार पूसा इन्स्टीट्यूट में थे, जो डाक्टर स्वामिनाथन् से चिढ़ते थे। इसलिए लगातार उनके खिलाफ छापते रहे। लेकिन मैं साहू रमेश चन्द्र जैन की सभी शंकाओं का समाधान कर सका। मुझे उन्होंने कहा कि किसी भी पत्र–पत्रिका में सहायक संपादक बन जाओ। मैंने नारायण दत्त जी से सलाह की। वे तब तक बम्बई के अन्य युवा पत्रकारों की तरह मेरे भी बड़े भाई साहब बन चुके थे। उन्होंने सलाह दी कि हिन्दी में विज्ञान–पत्रिका निकालें और तुम्हें संपादक बनाएँ, तब तो ठीक है। नहीं तो क्या पता कल तुम्हें विज्ञान से हटाकर कहें कि राजनीति या खेल या अपराध पर लिखो।

मैंने उनकी सलाह मानकर वही बोला। मुझे कहा गया कि हिंदी में विज्ञान पत्रिका निकाली गई तो बुला लेगें। हिंदी में विज्ञान–पत्रिका की डमी भी बनवाई, लेकिन बाद में तो 'साइंस टुडे' की ऐसी–तैसी करके कई रूप बदले और वह भी बंद हो गई। जब मेरे मित्र और प्रख्यात कवि तथा साहित्यकार श्री कन्हैया लाल नंदन दिल्ली आए तो उन्होंने कहा कि 'अच्छा हुआ, तुम सरकारी पत्रकार बने रहे। लाला की नौकरी तुम्हारे बस की नहीं थी।

उससे पहले मैं सी एस आई आर की 'विज्ञान प्रगति' का सहायक संपादक बनते–बनते रह गया था। मुझे मौका देंगे यह कहकर एक सज्जन ने मुझे खूब निचोडा। मुझ से 'बाल–विज्ञान' की पूरी योजना बनवाई। एक विज्ञान–साहित्य प्रदर्शनी लगी थी। उसकी तारीफ लिखवाई। जब इंटरव्यू हुआ तो मेरे मित्र श्यामसुंदर शर्मा बाजी मार गए। लेकिन 'विज्ञान प्रगति' में मेरी रचनाएँ खूब छपीं। 'विज्ञान प्रगति सरिता के दिल्ली प्रेस में छपती थी। श्री जय प्रकाश भारती के प्रयासों से दिल्ली प्रेस ने हिंदी प्रेस में छपी वैज्ञानिक रचनाओं में से प्रतिवर्ष

सर्वश्रेष्ठ रचना को पुरस्कृत करना शुरू किया। भारती जी और श्यामसुंदर शर्मा पुरस्कृत हुए। साप्ताहिक हिन्दुस्तान के चार अंकों में 'मस्तिष्क' के बारे में प्रकाशित मेरी रचनाएँ पुरस्कार के लिए मंगाई गई जो खो गयीं और आज तक नहीं मिलीं।

विगत 40 वर्षों में अब तक मेरे 1000 के करीब लेख छप चुके हैं। लगभग 500–600 रेडियो–वार्ताएँ और टी.वी. कार्यक्रम हो चुके हैं। पर किताबें अभी छपनी हैं। क्यों नहीं छपीं यह दुर्भाग्य बहुत पहले शुरू हो गया था। नवभारत टाइम्स में मेरे अभिन्न मित्र श्री हरीश अग्रवाल हिंदी के पहले विज्ञान–संवाददाता नियुक्त हुए थे। उनके बहनोई श्री रमेश चन्द्र प्रेम भी विज्ञान लिखते थे और नवभारत टाइम्स के रविवारीय परिशिष्ट का संपादन करते थे। उन्होंने अपनी प्रकाशन–संस्था भी खोली थी। उन्ही दिनों हिंदी निदेशालय ने प्रकाशकों के सहयोग से लोकविज्ञान साहित्य छापन` की योजना बनाई थी। तब तक मेरे कोई 30–40 लेख छप चुके थे। मैंने उन्हें इकट्ठा करके 'विज्ञान–धारा' नाम से संकलन बनाया। मुझ से पूछा गया कि रेफ्री किसे बनाएँ। मैंने श्री गुणाकर मुले जी का नाम बता दिया। लेकिन हर तरह के वैज्ञानिक लेखों से भरा मेरा 'भानमती का पिटारा' मेरे परम मित्र मुले जी ने रद्द कर दिया। सरस्वती नदी की तरह मेरी 'विज्ञान धारा' भी लुप्त हो गई।

फिर मेरे मित्र 'पराग प्रकाशन' के मालिक श्री श्रीकृष्ण ने वैज्ञानिकों की जीवनी वाली मेरे लेख 'हमारे वैज्ञानिक' शीर्षक से किताब के रूप में छापे। उन्होंने विज्ञानकथाओं का संकलन करने और संपादित करने का काम भी सौंपा। साथ ही यह भी कहा कि बच्चे के बस्ते में जो–जो चीजें होती हैं, उनके वैज्ञानिक पहलू बताते हुए एक किताब लिखो।

इसी बीच डा. आत्माराम जी के आशीर्वाद से एक संस्था 'इंडियन एसोसिएशन ऑफ साइंस' बनी। यह तय हुआ कि बच्चों के लिए यह संस्था प्रकाशकों के सहयोग से हिंदी में पंचतंत्र की शैली में वैसी–ही रोचक विज्ञान की किताबें छापे। मैंने 100 किताबों की योजना बनाई। हिन्द पुस्तक भंडार छापने को तैयार हो गया। मुझे श्रीमती मोहनी राव के साथ मिलकर संपादन करना था। पाँच किताबें छपीं–प्रेमानंद चंदोला की 'बैक्टीरिया अदालत में' आत्माराम जी की 'ओजोन की छतरी', जोगेन्द्र सक्सेना की 'मंगल–यात्रा', प्रमोद जोशी की 'जाने–अनजाने पौधे' और कुलदीप शर्मा की 'बस्ते में विज्ञान'।

कुलदीप इस विषय पर पूरी लेखमाला लिख चुके थे। लेकिन श्रीकृष्ण जी को लगा कि मैंने उनके साथ धोखा किया। उनका 'आइडिया' दूसरे प्रकाशक से छपवा दिया। बस वे मेरी संपादित 'विज्ञान–कथाएँ' दबा गए। न तो छापी और न पांडुलिपि वापस की। कुट्टी हो गई।

ऐसी ही कुट्टी डा. धर्मवीर भारती जी से भी हो गई थी – मगर कुछ समय के लिए। हुआ यह कि उन दिनों 'धर्मयुग' में तालाबंदी चल रही थी। इसी बीच अखबारों में एक छोटी–सी खबर छपी कि भारतीय वैज्ञानिक डा. गिरिराज सिरोही के नाम पर अमेरिका की 'नेशनल जिओग्राफिक सोसाइटी' ने दक्षिण ध्रुव के बीचोबीच वाली जगह को 'सिरोही पाइंट' नाम दिया है। मैं सिरोही जी से मिला और एक पूरा लेख बना दिया। छह महीने तक ठीक पृथ्वी के केंद्र में प्रयोगशाला बनाकर वे रहे और 'जीव–घड़ी' का अध्ययन किया। मैंने लेख तो लिख दिया, मगर 'धर्मयुग' में तालाबंदी। छपे कैसे।

शनिवार की शाम को उन दिनों दिल्ली के साहित्यकार कनॉट प्लेस में टी हाउस और कॉफी हाउस में जमावड़ा करते थे। वहाँ मुझे रमेश उपाध्याय मिल गए जो उन दिनों 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में पत्रकार थे (बाद में मेरे साढू हो गए)। उन्हें पता चला कि 'सिरोही पॉइंट' पर मेरे पास पूरी रचना तैयार है तो वे विज्ञान स्तंभ के लिए ले गए। जैसे ही यह लेख छपा कि बम्बई से भारती जी की नाराजगी भरी चिट्ठी आई कि 'इस तरह की रचनाएं तो आप हमारे लिए लिखते थे। वहाँ क्यों दे दी। वगैरह। फिर काफी दिनों तक 'आपका शुभेच्छु–भारती' वाले रचना के लिए आग्रह वाले पत्र आने बंद हो गए। अपने सहकर्मियों से पत्र या तार भेजकर रचनाएँ मंगवाई। व्यकितगत पत्रों की शुरूआत साल–डेढ़ साल बाद ही हुई। जबकि उनका इतना स्नेह था कि पंतनगर कृषि विश्वविद्यालय में जब मैं प्रकाशन निदेशालय का एसोसिएट डाइरेक्टर था, तो उन्होंने 'धर्मयुग' में 'सब एडीटर' का नियुक्ति पत्र भेज दिया था। लेकिन मैं तब भी चूक गया, नहीं तो गैर–सरकारी पत्रकारिता में आकर सरकार को खूब गरियाता। यह विष मुझे व्यंग्य कविताओं में ही निकालना पड़ा।

मेरे संघर्ष काल में मुझे दिल्ली विश्वविद्यालय के प्राणिविज्ञान विभाग के प्राध्यापक डा. एच.एस. बिश्नोई,

वैज्ञानिक शब्दावली आयोग में मेरे बॉस दयानंद पंत जी, तथा मेरे मित्र डा. कृष्ण कुमार गुप्त, श्री प्रेमानंद चंदोला, श्री नरेन्द्र सिंह चौहान, श्री ध्रुव देव शर्मा और मेरे बहनोई तथा मित्र श्री टी.पी. पाठक तथा श्रीमती सुलभा पुराणिक तथा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद में मेरे बॉस (स्व.) डा. राम गोपल चतुर्वेदी का जो स्नेह मिला वह मेरे जीवन की थाती है।

मेरे गुरूओं में डा. एस.एन. चतुर्वेदी ने मुझे कवक विज्ञान पढ़ाया था और डा. आंर.एल. पालीवाल ने आनुवंशिकी। मैं जब यू.पी.एस.सी. में रिसर्च असिस्टेंट (बॉटनी–हिंदी) के इंटरव्यू के लिए जाने लगा, तो सोचा कि गुरूजनों का आशीर्वाद लेता चलूँ। बी.आर. कालेज, आगरा के बॉटनी डिपार्टमेंट पहुँचा। डा. पालीवाल मिले तो बोलें जरा रूको। मेरे पास एजूकेशन मिनिस्ट्री से एक किताब आयी है तुम्हारे काम की होगी। वह किताब केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय के वैज्ञानिक शब्दावली बोर्ड से छपी जीवविज्ञान की पहली शब्दावली थी हायर सैकंडरी स्तर की। बड़े काम की निकली। कोई दर्जन भर उम्मीदवारों मे दो महीने पहले ही एम.एस.सी. पास करके निकला सबसे कम उम्र का लेकिन उस छोटी पुस्तिका की बदौलत अकेला मैं था जिसे वैज्ञानिक शब्दावली के बारे में शिक्षा मंत्रालय के कार्यक्रम और पृष्ठभूमि की जानकारी थी। इंटरव्यू जिन विशेषज्ञों ने लिया उनमें बच्चन जी थे, जिनकी मधुशाला मुझे लगभग कंठस्थ थी, जैनेन्द्र जी थे जिनका 'सुनीता' उपन्यास उन दिनों साप्ताहकि हिन्दुस्तान में धारावाहिक छप रहा था और डा. रामधन शर्मा थे जो मुझ से 'नीतिशतक' के श्लोक सुनते रहे और दो पंक्तियां भूल जाने पर मुस्कराकर चुप हो गए। हालाँकि मेरे इंटर कालेज के भूगोल के अध्यापक वाजपेयी जी ने कहा था कि, "हाँ दिल्ली घूम आओ, यू.पी.एस.सी. में अभी से कहाँ सलेक्शन होगा," लेकिन ज़ब इंटव्यू देकर निकला तो मुझे पूरा भरोसा था कि मैं चुन लिया जाऊँगा। एम.एस.सी. में थर्ड डिवीजन के बावजूद मुझे चुना गया और नौ साल तक कवक विज्ञान तथा आनुवंशिंकी के लगभग 20000 परिभाषिक शब्द बनाकर तथा कुछ पुस्तकें अनुदित और संपादित करके अपने विज्ञान लेखन के बल पर मैं पंतनगर में सह–निदेशक चुना गया।

लेकिन जिस पद के लिए इंटरव्यू देने गया वह असिस्टेंट प्रोफेसर के तुल्य था। स्वयं कुलपति डा. ध्यानपाल सिंह इंटरव्यू बोर्ड के अध्यक्ष थे। तब तक आयोग में मैं सहायक शिक्षा अधिकारी की पदोन्नति पा चुका था। जब मुझे कहा गया कि मैं चुन लिया गया हूँ तो मैंने कहा कि इतना वेतन तो मुझे अभी मिल रहा है। कुलपति महोंदय ने उसी इंटरव्यू में मुझे 'एसोसिएट प्रोफेसर' के वेतन पर 'एसोसिएट डाइरेक्टर' का ऑफर दे दिया। वैसे प्रतिभा–खोजी कुलपति अब कहां।

वे चौदह महीने बनवास के दिन जरूर थे, लेकिन मेरे जीवन का स्वर्णयुग था वह। इतना बड़ा घर मिला, जिसमें बैडमिंटन का कोर्ट भी था और फल–सब्जी के खेत भी। 'किसान भारती' शुरू करके विज्ञान पत्रिका संपादित करने का सपना पूरा किया। चौदह महीनों में चौदह वैज्ञानिक पुस्तकें–कुछ अनुदित–कुछ मौलिक–संपादित करके प्रेस भेज दी गई थी। वह रिकार्ड फिर कभी नहीं बन पाया। सात वरिष्ठ अनुवादक बिना इंटरव्यू के मेरे और मेरे निदेशक के कहने पर तार भेजकर कुलपति जी ने नियुक्त किए थे। टेस्ट और इंटरव्यू छह महीने बाद किए गए। महीने भर में पूरे स्टाफ के साथ काम शुरू हो गया था। इन्हीं में थे प्रमोद जोशी और श्री देवेन्द्र मेवाड़ी जा विज्ञान के धुरंधर लेखक हैं। श्री मेवाड़ी को गतवर्ष ही संचार माध्यमों में सर्वश्रेष्ठ विज्ञान लेखन का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला है। श्री जोशी कई पुस्तकों के लिए डा. राजेन्द्र प्रसाद पुरस्कार से सम्मानित किए जा चुके है।

पंतनगर में था तो एक दिन मेरे गुरु डा. एस. एन. चतुर्वेदी का पोस्टकार्ड मिला कि आई सी ए आर से संपादक (हिंदी) का पद विज्ञापित हो गया है, जरूर आवेदन करो। मैंने आवेदन कर दिया, हालाँकि वेतनमान वही था, जो सह–निदेशक का था। लेकिन हमें कभी कुछ भी सरलता से क्यों मिलने लगा। पता चला कि कृषि मंत्री जगजीवन राम जी का कोई उम्मीदवार है। वह कविवर रामधारी सिंह दिनकर पर डाक्टरेट कर रहा था। सो उन्हें इंटरव्यू बोर्ड का अध्यक्ष बनाया गया। मेरे सौभाग्य से पंतनगर में प्रोफेसर अंबिका सिंह आई सी ए आर में एग्रोनोमी के सहायक महानिदेशक बनकर कृषि भवन में आ गए थे – कुछ महीने पहले ही। वे भी इंटरव्यू बोर्ड में थे और नवभारत टाइम्स के तत्कालीन संपादक अक्षय कुमार जैन भी। प्रो. अंबिका सिंह जी ने मेरी तमाम पत्रिकाएँ और पुस्तकें भेज कर सजवा दीं। कोई और तर्क नहीं चला तो दिनकर जी बोले, 'ठीक है शर्मा जी सबसे योग्य हैं, लेकिन उन्हें पंतनगर से हटाया तो उस

कृषि विश्वविद्यालय में हिंदी माध्यम से कृषि–शिक्षा का काम ठप्प हो जाएगा।' इसके जवाब में अंबिका सिंह जी ने कहा कि 'यहाँ शर्मा जी आ जाएंगे ता आठ कृषि विश्वविद्यालयों को उनकी प्रतिभा का लाभ मिलेगा।' इस पर इंटरव्यू बोर्ड के अध्यक्ष निरुतर हो गए। लेकिन मंत्री जी के उम्मीदवार के लिए एक और पद सृजित करके मुझे भी लिया गया और उन्हें भी।

फिर प्रधान संपादक बना, निदेशक बना। दो साल पहले फरवरी 1999 में रिटायर हुआ तो तब तक लंदन के पास वैलिंगफोर्ड में स्थित 'सी ए बी इंटरनेशनल' में चल रहा मेरी नियुक्ति का प्रस्ताव पक चुका था और मार्च 1999 से मैं इसमें प्रोग्राम कोआर्डीनेटर चुन लिया गया। यह संस्था लगभग 80 वर्ष पुरानी है। कृषि–प्रकाशन और कृषि–सूचना तथा कृषि विज्ञान की सबसे अग्रणी संस्था। दो साल तक तो मेरा कार्यालय पहियों पर था। अब पूसा–परिसर में ही नेशनल एग्रीकल्चरल साइंस सेंटर में कार्यालय बन गया है। यह आई सी ए आर के प्रकाशन, सूचना, पुस्तकालय में तंत्र तथा वैज्ञानिक तंत्र के आधुनिकीकरण में सहायता कर रही हैं। इसके लिए सन् 2002 तक सहयोग का करारनामा हुआ है। अगले दो साल का कार्यक्रम बनाया जा रहा है। आई सी ए आर के प्रकाशन विभाग को विश्व स्तर का बनाने के लिए 65 सुझाव दिए गए थे जिसमें से साठ मान लिए गए है। चार राष्ट्रीय पुस्तकालय विकसित किए जा रहे है – पूसा, इज्जतनगर, मुम्बई, और करनाल में। साथ ही कृषि इंजीनियरी का भोपाल में और उद्यान विज्ञान का बंगलौर में। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद कृषि की दृष्टि से महत्वपूर्ण सूक्ष्मजीवों का राष्ट्रीय जीन बैंक बना रही है। इसमें भी सी ए बी इंटरनेशनल अपनी विशेषज्ञता दे रहा है। इनके पास लगभग 360,000 कवकों का विश्व का सबसे बड़ा संग्रह है, जिसमे से 20–22 हजार सजीव नमूने भारत के हैं और वहाँ पहचान के लिए भेजे गए थें। अब वे वापस ए जा रहे हैं, पूरे वर्गीकरण के साथ।

इन दिनों मैं जैव प्रौद्योगिकी, चिकित्सा विज्ञान, पर्यावरण तथा सामान्य विज्ञान की चार किताबों को अंतिम रूप दे रहा हूँ। रेडियो के लिए पिछली सदी की कृषि पर 13 एपिसोड का धारावाहिक लिखा है। दूरदर्शन के लिए छह शीर्षस्थ वैज्ञानिकों पर फिल्म निर्माण के लिए आलेख लिखे जा रहे हैं। पत्र–पत्रिकाओं के लिए फरमाइशी लेखन चलता रहता है। एन सी एस टी सी और विज्ञान–प्रसार के साथ सहयोग करते रहते हैं। भारतीय विज्ञान लेखक संघ के अध्यक्ष के नाते विज्ञान–लेखन को आगे बढ़ाने के प्रयास भी जारी हैं।

कुल मिलाकर इस समय विज्ञान–पत्रिकारिता की स्थिति अब से 30–40 वर्ष पहले की अपेक्षा बेहतर है। धर्मयुग से उन दिनों 30 रूपये मानदेय मिलता था। अब तो 'खेती' मासिक पत्रिका ही 1000/– रूपये मानदेय दे देती है। हालाँकि रूपये की कीमत देखी जाए तो तब के 30 रूपये, अब के 3000/– के बराबर होंगे। पुरस्कार भी अनेक हैं। तब तो बस विज्ञान परिषद ही पुरस्कार देती थी। हाँ, वैसे गुरू, संपादक और 'धर्मयुग' 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' जैसी और नारायण दत्त जी द्वारा संपादित 'नवनीत' जैसी पत्रिकाएं गायब हैं। यह हिन्दी का और देश का दुर्भाग्य है।

अध्यक्ष
भारतीय विज्ञान लेखक संघ
457, हवासिंह ब्लाक
खेलगाँव, नई दिल्ली–110 049

सम्मान

विज्ञान परिषद् प्रयाग के आजीवन सभ्य, बायोवेद शोध एवं प्रसार केन्द्र के उप निदेशक डॉ. गोपाल पाण्डेय को 'सोसाइटी ऑफ प्लान्ट प्रोटेक्शन साइंसेज़' (भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान), नई दिल्ली द्वारा 12 अक्टूबर, 2001 को शेरे काश्मीर कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय जम्मू में आयोजित कार्यशाला में जम्मू और काश्मीर के कृषि मंत्री चौधरी रमजान ने फेलोशिप से सम्मानित किया।

विज्ञान परिषद् प्रयाग

द्वारा आयोजित

अखिल भारतीय लेखन प्रतियोगिता 2002

ह्विटेकर पुरस्कार

सर्वश्रेष्ठ लेख अथवा पुस्तक को एक हजार रूपये का पुरस्कार

- लेख अथवा पुस्तक केवल विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए।
- केवल प्रकाशित लेखों अथवा पुस्तकों पर ही विचार किया जाएगा।
- लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता है।
- लेख अथवा पुस्तक के प्रकाशन की अवधि वर्ष के जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है।
- इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख अथवा पुस्तक जनवरी 2001 से दिसम्बर 2001 माह के बीच प्रकाशित हो।
- लेखक को साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख अथवा पुस्तक मौलिक है।
- विज्ञान परिषद् से सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते।
- इस वर्ष के पुरस्कार के लिए प्रविष्टि भेजने की अंतिम तिथि 31 मार्च 2002 है।
- पुरस्कार के लिए पक्ष प्रचार करने वाले प्रतिभागी को इस प्रतियोगिता के लिए उपयुक्त नहीं समझा जाएगा।

प्रविष्टियाँ निम्न पते पर भेजें :

प्रधानमंत्री

विज्ञान परिषद् प्रयाग

महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211 002

फोन नं. (0532)460001

ई-मेल : vigyan1@sancharnet.in